श्री सम्यग्ज्ञान धर्म संस्कार निलय

भाग - १

– आचार्य वसुनंदी मुनि

गौरवशाली आचार्य परम्परा

चारित्र चक्रवर्ती

आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज

अन्तर्मना तपस्वी

आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज

निस्पृही संत

आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज

भारत गौरव

आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज

राष्ट्रसंत सिद्धांतचक्रवर्ती

श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज

संस्करण : प्रथम – २००० प्रतियाँ, सन् २०००
तृतीय – २००० प्रतियाँ, सन् २०२२
सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
I.S.B.N.No.: 81-878280-25

ग्रंथ	:	श्री सम्यग्ज्ञान धर्म संस्कार निलय –१
पावन आशीष	:	परम पूज्य सिद्धांत चक्रवर्ती राष्ट्रसंत आचार्य श्री १०८ विद्यानन्द जी मुनिराज
लेखक	:	आचार्य वसुनंदी मुनि
सहयोगी	:	ऐलक विमुक्त सागर (मुनि जिनानंद) क्षुल्लक विशंक सागर
प्रकाशक	:	निग्रंथ ग्रन्थमाला
ग्रंथाक	:	१०३
मूल्य	:	स्वाध्याय
ग्रंथ प्राप्ति स्थान	:	१. निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति नोएडा (उ.प्र.) २. आ. श्री वसुनंदी जी मुनिराज वर्षायोग समिति, बोरीवली (मुंबई)
संस्करण	:	तृतीय संस्करण – २०२२

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज

पूर्व नाम	–	सातमौड़ा पाटिल
माता का नाम	–	श्रीमती सत्यवती पाटिल
पिता का नाम	–	श्री भीमगौडा पाटिल,
जन्म	–	आषाढ कृष्ण षष्ठी,
		२५ जुलाई १८७२)
स्थान	–	येलगुड (तह. चिक्कोडी, जि. बेलगांव) कर्नाटक
नाम भाई (बड़े-छोटे)	–	ज्येष्ठ भ्राता-१ आदिगौड़ा २. देवगौडा, अनुज भ्राता १. कुम्भगौडा
नाम बहिन	–	कृष्णा बाई
क्षुल्लक दीक्षा	–	२५ जून १९१५, ज्येष्ठ शुक्ल चौदस वि.सं. १९७२, उत्तूर ग्राम
नाम	–	क्षुल्लक शांतिसागर (श्री देवेन्द्रकीर्ति जी द्वारा प्रदत्त)
ऐलक दीक्षा जी	–	१५ जनवरी १९१९ पौष शुक्ल चतुर्दशी वि.स. १९७५ गिरनार
मुनि दीक्षा	–	फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी, २ मार्च १९२० यरनाल (कर्नाटक)
गुरु	–	श्री देवेन्द्र कीर्ति जी महाराज
मुनि दीक्षा नाम	–	मुनि श्री शांतिसागर जी
आचार्य पद	–	८ अक्टूबर १९२४ चतुर्विध संघ द्वारा समडोली में
जीवन में उपवास	–	९९३८ दिन (२७.६ वर्ष) उपवास
समाधि	–	कुन्थलगिरि, भाद्रपद शुक्ल द्वितीय, १८ सितम्बर १९५५
समाधि की साधना	–	३६ दिन
कुल चातुर्मास	–	४२
संघस्थ साधु व साध्वी	–	१५ मुनि, ११ आर्यिका व क्षुल्लिका, ५ क्षुल्लक, २ ब्रह्मचारी व १ ब्रह्मचारिणी (कुल ३४ व्रती)

श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

पूर्व नाम	–	सुरेन्द्र उपाध्ये
माता का नाम	–	श्रीमती सरस्वती उपाध्ये
पिता का नाम	–	श्री कल्लपा उपाध्ये
जन्म	–	२२ अप्रैल १९२५ ग्राम शेडवाल (कर्नाटक)
ब्रह्मचर्य व्रत	–	सन् १९४६
क्षुल्लक दीक्षा	–	फाल्गुन सुदी तेरस, १५ अप्रैल १९४६ तमदड्डी
क्षुल्लक दीक्षा नाम	–	क्षुल्लक श्री पार्श्वकीर्ति जी
क्षुल्लक दीक्षा गुरु	–	आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी
मुनि दीक्षा	–	२५ जुलाई १९६३, सुभाष मैदान, दिल्ली
मुनि दीक्षा नाम	–	मुनि श्री विद्यानंद जी मुनिराज
मुनि दीक्षा गुरु	–	आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज
उपाध्याय पद	–	१७ नवम्बर १९७४ दिल्ली
गुरु	–	आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज
एलाचार्य पद	–	१७ नवम्बर १९७८, दिल्ली
आचार्य पद	–	२८ जून १९८७, दिल्ली
भाषा ज्ञान	–	कन्नड़, मराठी, हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, ब्राह्मी आदि
आचार्य श्री द्वारा प्रदत्त दीक्षाएँ	–	
क्षुल्लक दीक्षा		(२) क्षु. धर्मानंद १९८०, क्षु. ज्ञानानंद १९८०
गणिनी पद	–	(२) गणिनी आर्यिका प्रज्ञमति २००५
		गणिनी आर्यिका विद्याश्री २०११
उपाध्याय पद	–	(४) उपाध्याय गुप्तिसागर १९९१, उपाध्याय श्रुतसागर १९९९
		उपाध्याय निर्णयसागर २००२, उपाध्याय प्रज्ञसागर २०१०
एलाचार्य पद	–	(२) एलाचार्य श्रुतसागर जी २००६
		एलाचार्य वसुनंदी जी २००९

Serial No. - 103

I.S.B.N.No.: 81-878280-25

SHREE SAMYAKGYAN DHARAM SANSKAR NILAYA

PART - 1

OF
ACHARYA VASUNANDI MUNI

Published By

Nirgranth Granthmala

कृति का सृजनोद्देश्य

(– आचार्य वसुनंदी मुनि)

वर्तमान काल में भौतिक विज्ञान के चरम विकास से आध्यात्मिक ज्ञान प्रायः लुप्त हुआ सा प्रतीत हो रहा है, युवा वर्ग ही नहीं अपितु बाल, प्रौढ़ व बृद्ध वर्ग भी धर्म व सम्यग्ज्ञान से उदासीन दिखायी दे रहा है, इसका प्रमुख कारण है आध्यात्मिक व धार्मिक ग्रंथों का संस्कृत, प्राकृत या दुरुह/कठिन (अलंकार युक्त, साहित्यिक) हिन्दी भाषा में होना। इस कलिकाल में मिथ्यादृष्टि, विषय लोलुपी, कषायोद्रेकी मनुष्यों की प्रचुरता है, अतः प्रथमतः तो आध्यात्मिक विद्या, सुसंस्कारों की धार्मिक शिक्षा एवं सम्यग्ज्ञान की कुंजी स्वरूप जिनवाणी के प्रति रूचि ही नहीं, कदाचित् रूचि हो भी तो उनकी शंकाओं का वैज्ञानिक कसौटी पर कसा संतुष्टि कारक उत्तर प्राप्त नहीं हो पाता है, उनके माता–पिता या अन्य हितैषीजन युवा वर्ग की निन्दा करते हैं या तिरस्कार, अपमान जनक शब्दों के द्वारा डांट व फटकार ही प्राप्त होती है किन्तु समीचीन समाधान प्राप्त नहीं हो पाता। निंदा, तिरस्कार, अपमान, डाँट–फटकार वर्तमान कालीन इस गहन समस्या का समाधान नहीं है, अपितु जिज्ञासाओं के प्रति हतोत्साहित करना है। वर्तमान में ऐसे सत्साहित्य की आवश्यकता है जिससे युवा पीढ़ी को धर्म के प्रति अभिमुख किया जा सके, सत्साहित्य ही किसी देश राष्ट्र, राज्य, जनपद की संस्कृति, सभ्यता, आध्यात्मिकता व सुसंस्कारों की वृद्धि व उन्नति की आधारशिला है, सत्साहित्य के दिव्यालोक के बिना वह क्षेत्र तमोवृत एवं वहाँ की जनता अंधी ही कहलायेगी।

समीचीन ज्ञान विश्व की सबसे बड़ी शक्ति है इसके बिना जीवन के किसी समुद्देश्य को पूर्ण नहीं किया जा सकता। हीनाधिकता से रहित, विपरीतता से रहित वस्तु के स्वरूप का यथार्थ प्रतिपादन करने वाला, सम्यग्दर्शन का अभिनाभावी ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। जिस प्रकार प्रत्येक वय वाले प्राणी के शरीर के लिए भोजन, पानी, प्राणवायु आवश्यक है उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान व धर्ममय सुसंस्कार–चेतना की प्राणवायु, जलपान के समान अनिवार्य है।

सम्यग्ज्ञान चिन्मयालोक, सुखामृत, शांतिकर्ता शशि, सुधासिंधु, पीयूषपयोनिधि, सर्वगुणों का आधार, जीव का लक्षण, स्वभाव, नियति धर्म, गुण, चेतना का सूर्य, स्व– पर के उपकार का हेतु, मुक्ति का प्रधान कारण है।

इसके बिना समस्त गुण मिथ्या हैं, अज्ञानता ही मृत्यु है, अंधकार है, बिष है, बन्धन है, दुःखसिंधु है, पतन है, शल्य है, दुर्गति का प्रधान कारण है। सम्यग्ज्ञान के बिना व्यक्ति को अभी यह भी ज्ञात नहीं कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाना है? क्या करना है ? इस करनी का फल क्या होगा? और मैं अपनी यात्रा करते हुए कहाँ पहुँच गया हूँ ?

जो प्राणी मात्र को संसार के दुःखों से निकालकर उत्तम सुखों में धारण कराये वह धर्म कहलाता है, धर्म एक ऐसा पुल है जिस पर आरोहण कर आत्मा परमात्मा तक पहुँच जाती है, धर्म के संस्काररूपी

खाद पानी के बिना आत्मा का बीज परमात्मा रूपी वृक्ष नहीं बन सकता।

सम्यग्ज्ञान व धर्म के संस्कारों के बिना इन्सान महान नहीं हैवान, भगवान नहीं-शैतान, राम नहीं-बदनाम, योगी नहीं भोगी, उत्थान नहीं-पतन, स्वर्ग नहीं नरक, सुख नहीं-दुःख, कृतज्ञ नहीं कृतघ्नी, वंदनीय नहीं निंदनीय, आदरणीय नहीं अपमानीय, सम्मानीय नहीं उपेक्षणीय, संत नहीं डाँकू की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

एक सुशिक्षिता, सुसंस्कृता, धर्मवत्सला, आदर्श माँ हजारों विद्वानों से बढ़कर है, जीवन निर्माण की आद्य पाठशाला है किन्तु, सम्यग्ज्ञान व धर्म के संस्कारों से माता-पिता ही रहित होंगे तो अपनी संतान को सुसंस्कार कैसे दे सकेंगे? इस लघु कृति में सम्यग्ज्ञान व धार्मिक संस्कारों के सुन्दर व सुगन्धित सुमन हैं, जिनके माध्यम से सारा जीवन भी सुगन्धित बनाया जा सकता है।

इस लघु कृति का आबाल-वृद्धों के उपकारार्थ एवं अपने उपयोग को शुभ में लगाने हेतु लेखन किया है, यह कृति ऐलक श्री विमुक्त सागर जी (मुनि श्री जिनानंद जी) एवं क्षुल्लक श्री विशंक सागर जी के सहयोग से एवं धर्म जागृति संगठन, महावीर संगठन फिरोजाबाद के विनम्र अत्याग्रह से शिविर में पुस्तक आवश्यकता पूर्ति हेतु, संयोजित / सृजित की गयी है।

इस कृति में जो कुछ सार्थ है वह सब जिनेन्द्रवाणी है, जिसे परम पूज्य आचार्य भगवन्तों ने लिपिबद्ध किया, यह कृति उन ही परम पूज्य पंचपरमेष्ठियों के सम्मुख श्रद्धा-भक्ति व विनयाचार के साथ समर्पित है। इस कृति में जो त्रुटियाँ हैं वे मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, जिन्हें सुधारने के लिए पूज्य वीतरागी संत-भगवंत, एवं विद्वज्जन मुझे संकेत करने का कष्ट करेंगे। ऐसी मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है।

आसोज सुदी १० (विजयादशमी)
वीर निर्वाण - २५२६
ऋषभपुरी - टूण्डला (फिरोजाबाद) उ०प्र०

सर्वेषां मंगलम् भवतु
ॐ ह्री नमः
कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः

प्रकाशकीय – (मंगलभावना)

जिणवयण मोसहमिणं, विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं ।
जर–मरण–वाहिहरणं स्वयकरणं सव्वदुक्खाणं ।। (दर्शन पाहुड)

प्रवर्तमान इस दुःखमा काल में जहाँ चारों ओर मोह का साम्राज्य व्याप्त है, जहाँ पंचेन्द्रिय विषयोंकी प्रचुरता और कषायों की बहुलता दृष्टिगोचर होती है, प्रायः करके लोग भौतिक चकाचौंध से प्रभावित एवं आधुनिक उपकरणों के जाल में फंसे हुए हैं ऐसे में दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा लिपिबद्ध जिनसूत्रों का सरल एवं सुबोध भाषा में प्रचार प्रसार नितांत आवश्यक और समय की मांग बन गया हैं।

परम हितकारी दिव्य देशना के अमूल्य खजाने से बेखबर सभी भव्यात्माओं के जीवन में समीचीन धर्म–संस्कारों का बीजारोपण हो, आबालवृद्ध सभी रुचिपूर्वक इसका अध्ययन करें, समझें और आत्मसात करके अपने कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करें इसी मंगल भावना के साथ "श्री सम्यग्ज्ञान धर्म संस्कार निलय" पाठ्यग्रंथ का यह तृतीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है ।

" यह लघुकृति वर्तमान और आनेवाली पीढ़ियों के जीवनपथ को अहिंसामय धर्म से पल्लवित करने और भवान्तरों में केवलज्ञान की प्राप्ति में निमित्त बनें ", इसी भावना और कामना के साथ परमोपकारी प.पू. अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज के पावन चरणों में कोटि–कोटि वंदन करते हैं।

" सत्पुरुषों का योगबल जगतका कल्याण करे। "
" जिनशासन चिरकाल तक जयवन्त रहे । "

– श्री शांति विद्यासागर दिगम्बर जैन ट्रस्ट
आचार्य श्री वसुनंदी वर्षायोग समिति
(सभी सदस्यगण)
बोरीवली (पश्चिम), मुंबई ४०००१२

अध्याय–१

णमोकार मंत्र

प्रश्न १. णमोकार मंत्र किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस मंत्र के माध्यम से पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है, जो विश्व के सम्पूर्ण मंत्रों का मूल है, ऐसे अनादि-निधन मंत्र को णमोकार मंत्र कहते हैं।

प्रश्न २. परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो परमपद (सर्वोत्कृष्ट पद) में विराजमान हैं या जो संसारी प्राणियों के लिए परम इष्ट हैं, अथवा परम इष्ट अवस्था को प्राप्त कराने में कारणभूत हैं, उन सर्व संसारी जीवों द्वारा वन्दनीय, वीतरागी, गुणवान महापुरुषों को परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न ३. अनादि–निधन का क्या अर्थ होता है ?

उत्तर– जिसका कभी प्रारंभ नहीं हुआ हो और न ही जिनका कभी अंत हो, ऐसे आदि व अंत से रहित द्रव्य ही अनादि-अनिधन कहलाते हैं, दोनों शब्दों को समासान्त करने पर इसे अनादि-निधन कहते हैं।

प्रश्न ४. क्या यह णमोकार मंत्र मात्र जैनों के लिए ही है ?

उत्तर– नहीं ! यह मंत्र किसी सम्प्रदाय, पंथ, जाति, आम्नाय, संस्था या वर्ण विशेष के लिए नहीं है अपितु प्राणी मात्र का कल्याण करने वाला है, इस मंत्र को जो कोई भी भव्य जीव सत् श्रद्धा, भक्ति, समर्पण व विनयाचार से युक्त होकर पढ़ता है, सुनता है, स्मरण करता है, ध्यान करता है, वह भव्य जीव कल्याण/परम शुद्ध/परमात्म अवस्था को भी प्राप्त कर लेता है। इतना अवश्य है इस मंत्र पर विश्वास करने वाला ही सच्चा जैन है।

प्रश्न ५. उदाहरण द्वारा समझाने की कृपा करें कि यह मंत्र किस प्रकार प्राणी मात्र का कल्याण करने वाला होता है ?

उत्तर– जिस प्रकार पृथ्वी, आकाश, जल, चन्द्रमा की चाँदनी, सूर्य का प्रकाश, गाय का दूध, वृक्षों के फल, अग्नि, हवा, औषधि आदि किसी प्राणी विशेष, वर्ग, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, आम्नाय, पंथ विशेषों के लिए ही उपयोगी / सुखकर नहीं होते, अपितु इनका सेवन करने वाले प्रत्येक प्राणी मात्र को सुख के हेतु / उपकारी होते हैं, उसी प्रकार यह महामंत्र भी सभी श्रद्धालु श्रोता, वक्ता, ध्याता व स्मरण कर्ताओं को सुखकर व दुःखहर होता है।

प्रश्न ६. उन भगवान का क्या नाम है ? जिनके लिए इस मंत्र के माध्यम से नमस्कार किया गया है ?

उत्तर- इस मंत्र में किसी व्यक्ति विशेष या नामधारी किसी एक भगवान को नहीं अपितु उन-उन गुणों से युक्त परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है। इस मंत्र के माध्यम से अनंत गुणों के पिण्ड, समग्र शक्तियों के स्रोतभूत, सर्वज्ञ, वीतरागी, परम हितोपदेशी अरिहंत भगवान को, द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म से रहित, अशरीरी अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठियों को, पंचाचार परायण, चतुर्विध संघ के नायक, विरागी निग्रंथ तपोधन आचार्य परमेष्ठियों को, रत्नत्रय से युक्त, भव्य जीवों को मोक्ष का उपदेश देने वाले विरागी उपाध्याय परमेष्ठियों को एवं विषय, कषाय, आरंभ, परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान, तप में लीन रहने वाले समस्त साधु परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है।

प्रश्न ७. इस मंत्र में किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार क्यों नहीं किया गया ?

उत्तर- व्यक्ति पूज्य नहीं होता अपितु उसका व्यक्तित्व पूज्य होता है। जैन-दर्शन गुणों का पुजारी है, गुण-गुणी से कभी अलग नहीं होते, जहाँ गुणों की पूजा होती है, वहाँ व्यक्ति (गुणी) की पूजा भी हो जाती है। गुणों को सभी लोग चाहते हैं, "**गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते**"। व्यक्ति को सभी नहीं चाहते, जिस व्यक्ति को आप चाहते हैं, संभव है दूसरा नहीं चाहता हो, किन्तु गुणों को, धर्मों को, स्वभाव को सभी चाहते हैं, इसलिए इस मंत्र में किसी एक व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया।

प्रश्न ८. इस मंत्र के द्वारा गुणों की आराधना करने का क्या कुछ और भी रहस्य है ? एवं गुणों से युक्त व्यक्ति का नाम लेकर नमस्कार करने में क्या हानि है ?

उत्तर- गुण त्रैकालिक एवं सर्वव्यापी होते हैं, व्यक्ति या उसका नाम त्रैकालिक या सर्वव्यापी नहीं हो सकता, उन शक्तियों या गुणों से युक्त व्यक्ति की पूजा तो की जा सकती है, किन्तु गुण विहीन-मात्र नाम धारक परमात्मा की भी पूजा नहीं की जा सकती। उक्त गुणों से युक्त उन परमेष्ठियों के कुछ भी नाम हों, लेकिन वे सभी गुणधारी सभी के लिए पूज्य होते हैं, इसलिए यह महामंत्र णमोकार प्राणी मात्र के लिए ग्राह्य एवं कल्याण कारक है।

प्रश्न ९. ये (उक्त) पाँचों परमेष्ठी कब से हैं और कब तक रहेंगे?

उत्तर- ये पांचों परमेष्ठी अनादिकाल से हैं और ये पांचों ही परमेष्ठी अनन्तकाल तक होते रहेंगे। गुणों का कभी अभाव नहीं होता, अतएव उन गुणों को भव्य आत्माएँ आगे भी प्राप्त करती रहेंगी।

प्रश्न १०. इसे किसी उदाहरण द्वारा समझाने की कृपा करें कि पाँचों परमेष्ठी अनंतकाल तक कैसे रहेंगे ?

उत्तर- जिस प्रकार जल की शीतलता, अग्नि की उष्णता, जीव की चैतन्यता, हवा की गतिशीलता, नीम में कड़वापन, शक्कर में मिठास अनादिकाल से है और अनन्तकाल तक रहेंगे उसी प्रकार उक्त परमेष्ठी भी अनादिकाल से हैं और अनन्तकाल तक रहेंगे।

प्रश्न ११. णमोकार मंत्र को शुद्ध उच्चारण करते हुए सुनाओ।

उत्तर– णमो अरिहंताणं – सभी अरिहंतों को नमस्कार हो।

णमो सिद्धाणं – सभी सिद्धों को नमस्कार हो।

णमो आइरियाणं – सभी आचार्यों को नमस्कार हो।

णमो उवज्झायाणं – सभी उपाध्यायों को नमस्कार हो।

णमो लोए सव्वसाहूणं – लोकवर्ती सभी साधुओं को नमस्कार हो।

प्रश्न १२. इस महामंत्र को हिन्दी पद्य में कैसे पढ़ें ? यदि व्यक्ति कोई उक्त प्राकृत भाषा में पढ़ने में असमर्थ है ?

उत्तर– अरिहन्तों को नमस्कार, श्री सिद्धों को नमस्कार।

आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायों को नमस्कार।।

जग में जितने साधुगण हैं, उन सबको वन्दूँ बार-बार।

अरिहंतों को नमस्कार.....।।

उक्त प्रकार भी पद्य में गा-गाकर कीर्तन कर सकते हैं, जिस प्रकार पढ़ने से आपके परिणाम अत्यन्त निर्मल हों, उसी प्रकार पढ़ना उचित है, एकान्ततः ऐसा नियम नहीं है कि आपको किसी निश्चित भाषा में ही पढ़ना पड़ेगा। हाँ यदि मूलभाषा में ज्यों का त्यों पढ़ें तो अति उत्तम है।

प्रश्न १३. णमोकार मंत्र में कितने पद, अक्षर, मात्राऐं, स्वर व व्यंजन हैं ?

उत्तर– णमोकार मंत्र में मूलपद पाँच (५) पद, उत्तर पद-ग्यारह (११), पैंतीस (३५) अक्षर, अट्ठावन (५८) मात्रायें, चौंतीस (३४) स्वर एवं तीस (३०) व्यंजन हैं।

प्रश्न १४. णमोकार मंत्र में (प्रत्येक पद में क्रमशः) कितने बीज वर्ण हैं ?

उत्तर– णमोकार मंत्र के प्रथम पद में-तेरह (१३), द्वितीय पद में ग्यारह (११), तृतीय पद में बारह (१२), चतुर्थ पद में चौदह (१४) एवं पंचम पद में अट्ठारह (१८) बीज वर्ण हैं।

प्रश्न १५. णमोकार मंत्र के पाँचों पदों में क्रमशः कितने-कितने अक्षर हैं ?

उत्तर– णमोकार मंत्र के पाँचों पदों में क्रमशः सात, पाँच, सात, सात, नौ एवं पाँचों पदों में कुल पैंतीस अक्षर हैं।

प्रश्न १६. णमोकार मंत्र के पाँचों पदों में क्रमशः कितनी-कितनी मात्राएँ हैं ?

उत्तर– णमोकार मंत्र के पाँचों पदों में क्रमशः ग्यारह, नौ, ग्यारह, बारह, पन्द्रह एवं कुल पाँचों पदों में

अट्ठावन (५८) मात्रायें हैं।

प्रश्न १७. णमोकार मंत्र के पाँचों पदों में क्रमशः कितने-कितने स्वर हैं ?

उत्तर- णमोकार मंत्र के पाँचों पदों में क्रमशः छह, पाँच, सात, सात, नौ स्वर हैं, पाँचों पदों में कुल चौंतीस (३४) स्वर हैं।

प्रश्न १८. णमोकार मंत्र के पाँचों पदों में क्रमशः कितने-कितने व्यञ्जन हैं ?

उत्तर- णमोकार मंत्र के पाँचों पदों में क्रमशः छह, पाँच, पाँच, छह एवं आठ व्यञ्जन हैं। पाँचों पदों में कुल तीस (३०) व्यञ्जन हैं।

प्रश्न १९. णमोकार मंत्र में उत्तर पद ग्यारह किस प्रकार संभावित हैं ? समझाने की कृपा करें।

उत्तर- णमोकार मंत्र में प्रथम मूल पद-णमो अरिहंताणं में उत्तर पद दो हैं प्रथम णमो, द्वितीय अरिहंताणं। इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ व पंचम पद में क्रमशः दो, दो, दो व तीन उत्तर पद हैं, इस प्रकार कुल ग्यारह उत्तर पद हैं।

प्रश्न २०. णमोकार मंत्र में अक्षर, मात्रा की गणना किस प्रकार की जाती है ? समझाने की कृपा करें।

उत्तर- णमोकार मंत्र में अक्षर, मात्रा की गणना निम्न प्रकार की जाती है -

। । । । । । ।
णमो अरिहंताणं - ७ (सात) अक्षर- प्रथम पद में
। ऽ ।। ऽ ऽ ऽ - ११ (ग्यारह) मात्राऐं- प्रथम पद में
। । । । ।
णमो सिद्धाणं - ५ (पाँच) अक्षर- द्वितीय पद में
। ऽ ऽ ऽ ऽ - ९ (नौ) मात्राऐं- द्वितीय पद में
। । । । । । ।
णमो आइरियाणं - ७ (सात) अक्षर- तृतीय पद में
। ऽ ऽ।। ऽ ऽ - ११ (ग्यारह) मात्राऐं- तृतीय पद में
। । । । । । ।
णमो उवज्झायाणं - ७ (सात) अक्षर- चतुर्थ पद में
। ऽ ।ऽ ऽ ऽ ऽ - १२ (बारह) मात्राऐं- चतुर्थ पद में
। । ।। ।। । । ।
णमो लोए सव्वसाहूणं - ९ (नौ) अक्षर- पंचम पद में
।ऽ ऽ। ऽ। ऽ ऽ ऽ - १५ (पन्द्रह) मात्राऐं- पंचम पद में

नोट-

१. स्वर रहित व्यञ्जनों की गिनती अक्षरों में नहीं की जाती।

२. प्राकृत व्याकरण के अनुसार "ए" स्वतंत्र वर्ण है, २ वर्णों (अ +इ) का मेल नहीं है। संस्कृत व्याकरणानुसार "ए" संयुक्त (अ + इ) वर्ण है । संयुक्त अक्षर की दो मात्राएँ होती हैं किन्तु, यह मंत्र प्राकृत भाषा का है अतएव पंचम पद में लोए शब्द में विद्यमान "ए" की एक ही मात्रा गिनी जायेगी।

३. मात्राओं की गणना में जो "ऽ" चिन्ह बनाया है वह गुरु या २ मात्रा का प्रतीक है ।

प्रश्न २१. णमोकार मंत्र में स्वर एवं व्यजनों की गणना किस प्रकार की जाती है ? समझाने की कृपा करें।

उत्तर– णमोकार मंत्र में स्वर एवं व्यञ्जनों की गणना निम्न प्रकार कर सकते हैं –

।। ।।।। – ६ (छह) स्वर– प्रथम पद में

णमो अरिहंताणं

।। ।।।। – ६ (छह) व्यञ्जन– प्रथम पद में

।। ।।। – ५ (पाँच) स्वर– द्वितीय पद में

णमो सिद्धाणं

।। ।।। – ५ (पाँच) व्यञ्जन– द्वितीय पद में

।। ।।।।। – ७ (सात) स्वर– तृतीय पद में

णमो आइरियाणं

।। ।।। – ५ (पाँच) व्यञ्जन– तृतीय पद में

।। ।। ।।। – ७ (सात) स्वर– चतुर्थ पद में

णमो उवज्झायाणं

।। ।।।। – ६ (छह) व्यञ्जन– चतुर्थ पद में

।। ।। ।।।।। – ९ (नौ) स्वर– पंचम पद में

णमो लोए सव्वसाहूणं

।।। ।।।।। – ८ (आठ) व्यञ्जन– पंचम पद में

प्रश्न २२. णमोकार मंत्र को कितने प्रकार से पढ़ सकते हैं ? उनके नाम क्या–क्या है ?

उत्तर– णमोकार मंत्र की जाप तीन प्रकार से की जा सकती है, वे तीनों भेद निम्नांकित हैं– (१) पूर्वानुपूर्वी (२) पश्चातानुपूर्वी (३) यथातथानुपूर्वी।

प्रश्न २३. पूर्वानुपूर्वी किसे कहते हैं ? समझाने की कृपा करें ?

उत्तर– पूर्वानुपूर्वी का अर्थ है–णमोकार मंत्र को क्रमशः पढ़ना–जैसे–प्रथम पद, द्वितीय पद, तृतीय पद, चतुर्थ पद, पंचम पद। अर्थात् क्रमानुसार पढ़ने का नाम ही पूर्वानुपूर्वी है ।

प्रश्न २४. पश्चातानुपूर्वी किसे कहते हैं ?

उत्तर– पश्चातानुपूर्वी का अर्थ है– महामंत्र को या किसी अन्य भी विषय को विपरीत क्रम से पढ़ना। यथा–महामंत्र का पहले पंचम पद पढ़ना, फिर चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम पद को पढ़ना। अर्थात् विपरीत क्रमानुसार पढ़ना ही पश्चातानुपूर्वी है। यथा–५, ४, ३, २, १,.....।

प्रश्न २५. याथातथानुपूर्वी किसे कहते हैं ? समझाने की कृपा करें।

उत्तर– यथातथानुपूर्वी का अर्थ है, महामंत्र को जहाँ–तहाँ से, बीच में से कहीं से भी पढ़ना प्रारंभ कर देना। किसी भी पद को किसी भी स्थान पर पढ़ा जा सकता है, इतना विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कोई पद छूटे नहीं तथा कोई पद दो बार भी न हो । यथा–२, ३, ४, ५, १ या ३, २, ४, ५, १ या ४, २, ३, १, ५ या ४, ५, ३, १, २ आदि उक्त किसी भी प्रकार पढ़ सकते हैं।

प्रश्न २६. उक्त प्रकार से णमोकार मंत्र पढ़ने का क्या प्रयोजन है ? क्या इस प्रकार मनोरंजन के लिए पढ़ा जाता है ?

उत्तर– णमोकार महामंत्र को पूर्वानुपूर्वी, पश्चातानुपूर्वी या यथातथानुपूर्वी के रूप में पढ़ने का मुख्य उद्देश्य है मन को महामंत्र में ही स्थिर कर देना। इस प्रकार मंत्र को पढ़ने से मन एवं चेतन का रंजन नहीं अपितु मंजन (सफाई / शुद्धता) की जाती है।

प्रश्न २७. उक्त तीनों प्रकारों में से किस प्रकार महामंत्र को पढ़ने से सर्वाधिक पुण्यास्रव, पाप संवर एवं निर्जरा की प्राप्ति होती है ? अर्थात् किस प्रकार से पढ़ना सर्वश्रेष्ठ माना गया है ?

उत्तर– उक्त तीनों प्रकारों में से उसी प्रकार पढ़ना सर्वश्रेष्ठ है जिस प्रकार पढ़ने से परिणाम अत्यन्त निर्मल हों, मन स्थिरता को प्राप्त हो। तीनों योगों की एकाग्रता जिस प्रकार पढ़ने से बने उसी प्रकार पढ़ना चाहिए।

प्रश्न २८. णमोकार मंत्र को कब और कैसे पढ़ना चाहिए ?

उत्तर– णमोकार मंत्र को प्रात:काल स्नान आदि से शुद्ध होकर जपना चाहिए, इसके अतिरिक्त इस मंत्र को कभी भी, किसी भी परिस्थिति में, कहीं भी, किसी भी मुद्रा में, उठते–बैठते, चलते–फिरते, सोते–जागते, खाते–पीते हुए भी स्मरण किया जा सकता है।

प्रश्न २९. णमोकार मंत्र की जाप करने के कितने भेद हैं ? और कौन–कौन से ? बताने की कृपा करें ।

उत्तर– णमोकार मंत्र की जाप करने के मुख्य चार भेद हैं– (१) वैखरी (२) मध्यमा (३) पश्यन्ति (४) सूक्ष्म।

प्रश्न ३०. उक्त चारों प्रकार की जाप कैसे की जाती है ? एवं इन जापों में क्या कोई विशेषता भी है ? यदि हाँ तो क्या–क्या विशेषताएं हैं ?

उत्तर– **१. वैखरी जाप–** णमोकार मंत्र का उच्चारण इतनी तेज आवाज से करना, जिसे कि पास वाला

व्यक्ति भी सुन ले, इस प्रकार की जाप करने को "**वैखरी जाप**" या "**ध्वनि उच्चारण**" जाप कहते हैं।

२. मध्यमा जाप– इस प्रकार की जाप करने से ध्वनि बाहर नहीं निकलती किन्तु ओंठ हिलते दिखाई देते हैं, इस जाप को ओठों से करने के कारण "**उपांशु**" जाप भी कहते हैं।

३. पश्यन्ति– इस प्रकार की जाप करने में ध्वनि भी बाहर प्रसारित नहीं होती और न ही ओंठ हिलते हैं, किन्तु अंदर ही अंदर जीभ चलती रहती है, इस प्रकार की जाप को कुछ विज्ञ पुरुष "**मानसिक जाप**" भी कहते हैं।

४. सूक्ष्म जाप– इस प्रकार की जाप में न तो ध्वनि प्रसारित होती है, न ओंठ हिलते हैं और न ही जीभ हिलती है, अपितु मन ही मन में स्मरण किया जाता है। यह जाप चिन्तनात्मक (चिंतवन करते हुए) की जाती एवं पश्यन्ति जाप से अधिक सूक्ष्म है जाप में उत्तरोत्तर पुण्यास्रव, पाप संवर व निर्जरा की मात्रा में वृद्धि होती जाती है, जाप करने में क्रमश: समय अधिक-अधिक लगता है। जाप करने वालों की संख्या क्रमशः कम-कम होती है। उक्त चारों प्रकार की जापों का विशेष फल पृथक्-पृथक् होता है, किन्तु प्रारंभिक अवस्था में वैखरी जाप करें पुन: मन स्थिर होता जाये त्यों-त्यों जाप का क्रम बदलते जायें, पश्चात् मध्यमा, पश्यन्ति एवं सूक्ष्म जाप करें। उक्त चारों प्रकार की जाप में सूक्ष्म जाप-आत्मकल्याण, इष्ट सिद्धि की अपेक्षा से सर्वश्रेष्ठ है।

प्रश्न ३१. जाप प्रारंभ करने से पूर्व मन को स्थिर करने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर- जाप प्रारंभ करने के पूर्व मन की स्थिरता के लिए वचन व काय को स्थिर करना आवश्यक है, जाप देने का स्थान भी ऐसा हो जहाँ मन, वचन, काय विक्षिप्त नहीं हों। स्थिर मन से की गई जाप ही उत्तम फलदायी होती है।

प्रश्न ३२. णमोकार मंत्र के किस पद की कितनी-कितनी जाप करने से क्रूर ग्रहों का प्रभाव नष्ट हो जाता है या अनिष्टकारक ग्रहों का प्रभाव मंद/क्षीण हो जाता है?

उत्तर- णमोकार मंत्र सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है, सर्व अनिष्टों का संहारक एवं सर्व सुखों का सृजन करता है, अतः पूरे णमोकार मंत्र की जाप देना चाहिए। एक-एक पद की जाप भी दी जा सकती है । कुछ विज्ञ पुरुषों का मानना है कि णमोकार मंत्र के प्रथम पद (ॐ णमो अरिहंताणं) की दस हजार (१०,०००) जाप करने से चन्द्र, शुक्र व राहु ग्रहों का कुप्रभाव, द्वितीय पद (ॐ णमो सिद्धाणं) की दस हजार (१०,०००) जाप करने से सूर्य, मंगल व केतु का कुप्रभाव, तृतीय पद (ॐ णमो आइरियाणं) की दस हजार (१०,०००) जाप करने से गुरु का कुप्रभाव, चतुर्थ पद (ॐ णमो उवज्झायाणं) की दस हजार (१०,०००) जाप करने से बुध ग्रह का कुप्रभाव एवं पंचम पद (ॐ णमो लोए सव्व साहूणं) की दस हजार (१०,०००) जाप करने से शनि ग्रह का कुप्रभाव नष्ट हो जाता है। विधि पूर्वक जाप करने का सुफल नियम से

प्राप्त होता है। ये महामंत्र की जाप कभी भी निष्फल नहीं होती।

प्रश्न ३३ जाप लगाने की विधि क्या है? संक्षेप में संकेत देने की कृपा करें।

उत्तर– जाप लगाने वाला व्यक्ति द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धिपूर्वक जाप लगाये तो अति उत्तम रहे। जिस प्रकार उत्तम भूमि में, सुसमय में, विधिपूर्वक बोया गया उत्तम बीज, समयानुसार देखभाल जल सिंचन, खाद आदि देने से परमोत्तम (विपुल) फल को देने वाला होता है, उसी प्रकार उत्तम जापकर्ता आदि सभी कारण मिलने पर उत्तम फल की प्राप्ति होती है। जाप लगाने वाले की योग्यता (नियम, व्रत संयमादि) वस्त्र, आसन, जाप, मुद्रा की श्रेष्ठता, क्षेत्र की शुद्धि, काल–मास, तिथि, योग, वार लग्नादि की शुद्धि एवं भावों की शुद्धि (जिनकी शुद्धि–१० प्रकार की शुद्धियों पर आधारित है) आवश्यक है। जाप करने की विधि का विस्तार से कथन अन्यत्र मंत्र महोदधि आदि मंत्रशास्त्रों में देखें या अपने गुरुदेव से जाने।

प्रश्न ३४. मन को स्थिर करने के लिए किस–किस विधि से जाप देना चाहिए?

उत्तर– मन को स्थिर करने के लिए हस्तांगुलि जाप, घड़ी जाप, कमल जाप, माला दृष्टि जाप, कर माला जाप, नव पदार्थ व बारह भावना जाप, ९ कर्म व १२ तप जाप, नाभि व हृदय कमल जाप, इत्यादि अनेकों विधियों से मन को स्थिर करने के लिए जाप की जा सकती है।

प्रश्न ३५. णमोकार मंत्र को कितनी प्रकार से बोला जा सकता है?

उत्तर– णमोकार मंत्र को अनेकों प्रकार बोल सकते हैं, जप कर सकते हैं । कुछ विद्वानों का कहना है कि इसे १८, ४३२ (अट्ठारह हजार चार सौ बत्तीस) प्रकार से पढ़ / जप सकते हैं।

प्रश्न ३६. णमोकार मंत्र का कितनी बार जाप करने से नियम से मोक्ष की प्राप्ति होती है?

उत्तर– णमोकार मंत्र को भाव सहित परम विशुद्धि के साथ अन्तमुहूर्त तक ध्यान करने से भी असंख्यात भवों के संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं, मुहूर्त्तप्रमाण काल में भी व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। फिर भी कुछ मनीषियों का कथन है कि णमोकार महामंत्र का आठ करोड़, आठ लाख, आठ हजार, आठ सौ आठ बार (८,०८,०८,८०८ बार) जाप करने वाले को नियम से मोक्ष की / निर्वाण अवस्था की प्राप्ति होती है। यदि सांसारिक किसी भी वस्तु की कामना / वांछा वह नहीं करता है तो नियम से (अधिकतम आठ भवों में) मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ३७. णमोकार मंत्र में कितने मंत्रों का समावेश है ?

उत्तर– णमोकार मंत्र में ८४,००,००० (चौरासी लाख) मंत्रों का समावेश है।

प्रश्न ३८. णमोकार मंत्र मूलतः किस भाषा में व किस छन्द में लिपिबद्ध है ?

उत्तर– णमोकार मंत्र मूलतः प्राकृत भाषा एवं आर्याछन्द में लिपिबद्ध है, इसे आर्याछन्द / गाथा छन्द की तरह गा करके भी पढ़ा जा सकता है।

प्रश्न ३९. णमोकार मंत्र को इस काल में मंगलाचरण के रूप में सर्वप्रथम लिपिबद्ध (किन आचार्यों ने) किस शास्त्र में किया है ?

उत्तर– णमोकार मंत्र अनादिकाल से है, अनन्तकाल तक रहेगा, किन्तु इस काल में मंगलाचरण के रूप में आचार्य भगवन् श्री पुष्पदंत जी व आचार्य भगवन् श्री भूतबली जी महाराज ने श्रीषट्खण्डागम जी ग्रंथ के मंगलाचरण के रूप में प्रथमतः लिपिबद्ध किया है ।

प्रश्न ४०. णमोकार मंत्र के पर्यायवाची नाम कौन–कौन से हैं ? जिनके सम्बोधन करने से इस ही मंत्र का बोध होता है ?

उत्तर– णमोकार मंत्र, महामंत्र, मूल मंत्र, मृत्युंजयी मंत्र, परमेष्ठी मंत्र, पंच नमस्कार मंत्र, मंत्र राज, अपराजित मंत्र, सर्वदुःखहारक मंत्र, शिव बीज मंत्र, कर्म निर्मूल मंत्र, सर्व सौख्य मंत्र, संकट मोचक मंत्र, पाप विनाशक मंत्र, अनादि–निधन मंत्र, आद्य मंगल मंत्र आदि नाम इस मंत्र के वर्तमान में प्रचलित हैं।

प्रश्न ४१. परमेष्ठी कितने होते हैं और कौन–कौन से नाम बताएं ?

उत्तर– परमेष्ठी पाँच होते हैं, १. श्री अरिहंत जी, २. श्री सिद्ध जी, ३. श्री आचार्य जी, ४. श्री उपाध्याय जी एवं ५. श्री साधु परमेष्ठी जी।

प्रश्न ४२. ये पाँचों परमेष्ठी जी किस प्रकार और कब पूज्य हैं ?

उत्तर– त्रिकालवर्ती ये पाँचों परमेष्ठी जी समस्त संसारी जीवों द्वारा सदैव, पूज्यनीय, वंदनीय, अर्चनीय, श्रद्धेय, ध्यातव्य हैं।

प्रश्न ४३. पंचम काल में इस भरत क्षेत्र में कितने परमेष्ठी होते हैं ?

उत्तर– पंचमकाल में इस भरत क्षेत्र में तीन परमेष्ठी होते हैं, क्योंकि पंचम काल में जन्मा हुआ व्यक्ति मोक्ष नहीं जा सकता, न ही अरिहंत अवस्था को प्राप्त कर सकता है। अतः इस पंचमकाल में श्री आचार्य परमेष्ठी जी, श्री उपाध्याय परमेष्ठी जी एवं श्री साधु परमेष्ठी जी ये तीन परमेष्ठी ही होते हैं।

प्रश्न ४४. पाँचों परमेष्ठियों के कुल कितने मूल गुण होते हैं ?

उत्तर– पाँचों परमेष्ठियों के (४६ + ८ + ३६ + २५ + २८ = १४३) कुल १४३ मूल गुण होते हैं। (विस्तार से कथन आगे किया गया है वहाँ देखें)

प्रश्न ४५. पाँचों परमेष्ठियों में देव परमेष्ठी कितने हैं एवं गुरू परमेष्ठी कितने हैं ?

उत्तर– उक्त पाँचों परमेष्ठियों में श्री अरिहंत जी व श्री सिद्ध जी देव (परमात्मा) भगवान कहलाते हैं, शेष तीन परमेष्ठी गुरु कहलाते हैं।

प्रश्न ४६. णमोकार मंत्र का महात्म्य (महत्व) की गाथा अर्थ सहित बतलाओ।

उत्तर– **एसो पंच णमोयारो (णमोक्कारो), सव्व पावप्पणासणो।**

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होई मंगलं ।।

अर्थ– यह पंच नमस्कार मंत्र समस्त पापों को नष्ट करने वाला है एवं विश्व के सर्व मंगलों में पहला मंगल है।

प्रश्न ४७. णमोकार मंत्र के प्रभाव से इस लोक में किन–किन भव्य जीवों के दुःख दूर हुए ? कुछ एक व्यक्तियों के नाम बताने की कृपा करें ?

उत्तर– णमोकार मंत्र के प्रभाव से आरोग्यता, संकटों का नाश, सद्बुद्धि की प्राप्ति, प्राण रक्षा, भौतिक सुख, धन वैभव एवं अनेकों इच्छाओं को पूर्ण करने वाले अनन्तानंत महापुरुष हुए जिन्होंने परम्परा से मोक्ष को भी प्राप्त किया / करेंगे।

जैसे– अंजन चोर, सुदर्शन सेठ, सती सीता, द्रोपदी, वज्रकर्ण, विभीषण, सती अंजना, वारिषेण, श्रीपाल, महीपाल, जिनदत्त, मैंना सुन्दरी, यमपाल, सोमा सती, वज्रबाहु, शिवभूति, जिनदत्ता, स्वर्णखुर चोर, इत्यादि अनेकों कथाऐं आगम में वर्णित हैं।

प्रश्न ४८. णमोकार मंत्र के प्रभाव से परभव में किसे क्या फल प्राप्त हुआ ?

उत्तर– णमोकार मंत्र के प्रभाव से–कुत्ता, मेढ़ा, बंदर, नाग–नागिनी, बैल, हाथी, बकरा, तोता, शेर, विलाव, सिंहनी, वसुभूति, अनंतमती, चन्द्रलेखा, प्रभावती, दृढ़ सूर्य चोर, जिन पालित, विन्ध्य श्री, हथिनी आदि जीवों को देव गति या अनंतर मोक्ष की प्राप्ति। उक्त कथाएँ जिनागम से पढ़ें अथवा अपने गुरुदेव से सुनना चाहिए।

प्रश्न ४९. णमोकार मंत्र के अपमान से किसे क्या फल प्राप्त हुआ?

उत्तर– णमोकार मंत्र के अपमान से सुभौम चक्रवर्ती को नरक की प्राप्ति हुई, इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत सी कथाऐं जिनागम से जानना चाहिए।

प्रश्न ५०. णमोकार मंत्र सम्बन्धी इस अध्याय का अध्ययन करने से हमें क्या शिक्षा मिलती है?

उत्तर– णमोकार मंत्र सम्बन्धी इस अध्याय का अध्ययन करने से हमें यही शिक्षा मिलती है कि हमें सदैव इस मंत्र का जाप, ध्यान, स्मरण व श्रद्धान करना चाहिए। यह मंत्र ही समस्त पापों व दुःखों को नष्ट करने वाला है तथा इस मंत्र का कभी–भी अपमान नही करना चाहिए, सीढ़ियाँ, जमीन, दीवाल, पत्रिका, पत्र, पेपर आदि में नहीं लिखना चाहिए, कहीं लिखा भी हो, तो उस पर पैर आदि नहीं रखना चाहिए।

******

अध्याय–२

अरिहंत परमेष्ठी

प्रश्न १. श्री अरिहंत परमेष्ठी जी किसे कहते हैं?

उत्तर– जिन्होंने चार घातिया कर्मों को क्षय कर दिया है, अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर सामान्य भूमि से ५००० धनुष (२०,००० हाथ) ऊँचे विराजमान हैं, परमौदारिक शरीर से सुशोभित, वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, सकल परमात्मा को ही अरिहंत परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न २. श्री अरिहंत परमेष्ठी जी की परिभाषा एवं व्युत्पत्ति अर्थ बताएँ?

उत्तर– "**अरि**" = कर्म रूपी शत्रुओं को, **हंत** = नष्ट करने वाले, अतः परम इष्ट स्थान में विराजित अरिहंत परमेष्ठी कहलाते हैं। जो अरि, रज, रहस विहीन हैं वे अरिहंत हैं।

"**अर्ह**" शब्द पूजा, प्रशंसा, योग्य, समर्थ..... इत्यादि अर्थों में प्रयुक्त होता है, अतः जो पूज्य, प्रशंसा के योग्य एवं समस्त सामर्थ्य युक्त हैं, वे अरिहंत कहलाते हैं।

जो गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण, इन पाँच कल्याणकों में देवों के द्वारा पूजा के योग्य हैं अथवा देव कृत पूजा को प्राप्त हैं वे भी अरिहंत परमेष्ठी कहलाते हैं।

"**अरुह**"–जो कर्म रूपी बीज के दग्ध हो जाने पर पुनः संसार में उत्पन्न नहीं होते, वे अरुहंत / अरिहंत कहलाते हैं।

प्रश्न ३. घातिया कर्म किसे कहते हैं? वे कितने होते हैं, नाम बताओ?

उत्तर– जो जीव के अनुजीवी गुणों का घात करते हैं वे घातिया कर्म कहलाते हैं, ये कर्म चार होते हैं– १. ज्ञानावरण, २. दर्शनावरण, ३. मोहनीय, ४. अन्तराय ।

प्रश्न ४. अनुजीवी गुण किन्हें कहते हैं?

उत्तर– जो गुण जीव के साथ सदैव विद्यमान रहते हैं, जिनके बिना जीव जीवित नहीं रह सकता तथा जो गुण जीव की हर पर्याय में विभाव या स्वभाव रूप से होते हैं, वे अनुजीवी गुण कहलाते हैं, **जैसे**– ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य।

प्रश्न ५. एक धनुष का माप कितना होता है ?

उत्तर– एक धनुष = ४ हाथ, ४ हाथ = ९६ अंगुल तथा २,००० (दो हजार) धनुष = १ कोश प्रमाण होता है।

प्रश्न ६. अनन्त चतुष्टय किसे कहते हैं ?

उत्तर– अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य (शक्ति) इन चारों की अनन्तता (अन्त रहित अवस्था) ही अनन्त चतुष्टय कहलाती है।

प्रश्न ७. परमौदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो शरीर स्थूल / उदार हो उसे औदारिक शरीर कहते हैं, जिसमें त्रसों का औदारिक शरीर सप्त धातु – उपधातुओं से युक्त होता है। उस औदारिक शरीर का परम विशुद्ध हो जाना, सप्त धातु–उपधातुओं रहित हो जाना परमौदारिक अवस्था है, जो केवली अवस्था में होता है।

प्रश्न ८. वीतरागी किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो राग, द्वेषादि अट्ठारह दोषों से रहित होते हैं वे वीतरागी जिनेन्द्र देव कहलाते हैं। अर्थात् जिनका राग बीत गया (नष्ट हो गया) है, जहाँ राग नष्ट हो जाता है, वहाँ द्वेष भी नष्ट हो जाता है। राग–द्वेषादि भाव ही संसार के हेतु हैं।

प्रश्न ९. जिनेन्द्र देव या वीतरागी भगवान कौन–कौन से अट्ठारह दोषों से मुक्त होते हैं, समझाने की कृपा करें।

उत्तर– **छुह तण्ह भीरु रोसो, रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।**
सेदं खेद मदो रइ, विम्हिय णिद्दा जणुव्वेगो ।।६।। नियम सार ।।

अर्थ– भूख, प्यास, भय, क्रोध, राग, मोह, चिंता, जरा (बुढ़ापा), रुजा (रोग), मृत्यु, स्वेद (पसीना), खेद, मद, रति, विस्मय (आश्चर्य), निद्रा, जन्म, उद्वेग ये अट्ठारह दोष वीतरागी देव में नहीं पाये जाते हैं।

प्रश्न १०. उक्त अट्ठारह दोषों को हिन्दी छंद में बताने की कृपा करें।

उत्तर– **जन्म जरा–तिरखा क्षुधा, विस्मय आरत खेद ।**
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद ।।
राग द्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष ।
नहीं होत अरिहंत के, सो छवि लायक मोख ।।

प्रश्न ११. सर्वज्ञ किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो तीन लोक व अलोकाकाश सम्बन्धी समस्त चेतनाचेतन द्रव्यों एवं उनकी अनन्तानन्त त्रिकालवर्ती गुण–पर्यायों को युगपत् जानते हैं, उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं, अरिहंत परमेष्ठी व सिद्ध परमेष्ठी ये दोनों ही सर्वज्ञ होते हैं।

प्रश्न १२. हितोपदेशी किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– जो बिना किसी (इच्छा) स्वार्थ के संसार के प्राणियों को हित का उपदेश देते हैं, उन वीतरागी, सर्वज्ञ, सकल परमात्मा को ही हितोपदेशी कहते हैं।

प्रश्न १३. सकल परमात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो आत्मा बहिरात्मापने से मुक्त हो अन्तरात्मा बनकर, गहन साधनाकर, अपनी परम विशुद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुकी है, उस शरीर सहित परमात्मा को ही सकल परमात्मा कहते हैं।

प्रश्न १४. बहिरात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस आत्मा ने आत्मा के अतिरिक्त बाह्य पदार्थों में ही अपना अस्तित्व मान लिया है अथवा जो आत्मा व शरीर को एक मानता है, ऐसा पर पदार्थों को स्वभाव–मय एकीकृतभाव मानने वाला बहिरात्मा (मिथ्यादृष्टि) कहलाता है।

प्रश्न १५. अंतरात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस जीव ने आत्मा व पुद्गल के भेद को जान लिया है एवं मान लिया है, वह भेद विज्ञानी अंतरात्मा कहलाता है अथवा जिसकी मान्यता व श्रद्धान में आत्मा व अनात्मा के प्रति अंतर है, वह जीव अंतरात्मा कहलाता है।

प्रश्न १६. णमोकार मंत्र में कितने अरिहंतों को नमस्कार किया है ?

उत्तर– ढाई द्वीप में होने वाले समस्त, त्रिकालवर्ती (भूत, भविष्यत् व वर्तमान काल सम्बन्धी) समस्त अरिहंत परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है।

प्रश्न १७. यहाँ ढाई द्वीप सम्बन्धी अरिहंतों को ही नमस्कार क्यों किया है, उससे बाहर के अरिहंतों को क्यों नहीं?

उत्तर– अरिहंत परमेष्ठी ढाई द्वीप में ही हो सकते हैं, क्योंकि बिना मनुष्य गति और मनुष्यायु के सकल संयम, श्रेणी आरोहण असंभव है और बिना संयम व क्षपक श्रेणी आरोहण के अरिहंत अवस्था असंभव है। अत: ढाई द्वीप (जम्बूद्वीप + धातकी खण्ड + पुष्करार्ध द्वीप) शब्द का प्रयोग किया गया है।

प्रश्न १८. श्री अरिहंत परमेष्ठी जी या केवली भगवान के कितने भेद होते हैं?

उत्तर– श्री अरिहंत परमेष्ठी जी के सामान्यतया दो भेद होते हैं(१) सयोग केवली (२) अयोग केवली।

प्रश्न १९. सयोग केवली किसे कहते हैं?

उत्तर– जो योग सहित (वचन योग, काय योग, उपचार से मनोयोग युक्त हों) होते हैं, वे केवली भगवान सयोग केवली कहलाते हैं। अर्थात् तेरहवें गुणस्थान में विराजमान अरिहंत परमेष्ठी ही सयोग केवली हैं, इस गुणस्थान का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष कुछ अंतमुहूर्त कम १ कोटि पूर्व है।

प्रश्न २०. अयोग केवली किसे कहते हैं?

उत्तर– जो केवली भगवान योग से रहित होते हैं, वे चौदहवें गुणस्थानवर्ती सकल – परमात्मा अयोग केवली हैं। अयोग केवली गुणस्थान का काल उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाँच हस्व स्वरों के उच्चारण में जितना समय लगे उतने) काल प्रमाण होता है।

प्रश्न २१. केवली भगवान या अरिहंत परमेष्ठी के कितने भेद होते हैं?

उत्तर– केवली भगवान (अरिहंत परमेष्ठी जी) के सात भेद होते हैं – १. तीर्थंकर केवली २. सामान्य केवली ३. समुद्घात केवली ४. मूक केवली ५. अन्तः कृत केवली ६. उपसर्ग केवली ७. अनुबद्ध केवली।

प्रश्न २२. तीर्थंकर केवली किन्हें कहते हैं?

उत्तर– जिन्होंने पूर्व के द्वितीयभव में या वर्तमान भव में सोलह कारण भावनाओं को भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया था, जिनके ५/३/२ कल्याणक होते हैं, चार घातिया कर्मों से रहित, केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय से युक्त होते हैं, जिनके समवशरण आदि विभूति भी नियम से होती है वे धर्म प्रवर्तक जिन ही तीर्थंकर केवली कहलाते हैं।

प्रश्न २३. सामान्य केवली किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– चार घातिया कर्मों से रहित एवं अनन्त ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय से युक्त श्रमण / जिन ही सामान्य केवली कहलाते हैं।

प्रश्न २४. समुद्घात केवली किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– जिन्होंने ६ माह या इससे कम आयु शेष रहने पर चार घातिया कर्मों को नष्ट किया है, अनन्त ज्ञानादि, अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर एवं समुद्घात करके मोक्ष/ सिद्धत्व प्राप्त किया, वे केवली ही समुद्घात केवली कहलाते हैं।

प्रश्न २५. समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर– मूल शरीर को छोड़े बिना आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकल जाना समुद्घात कहलाता है, इस समुद्घात में ८ समय मात्र काल लगता है।

प्रश्न २६. समुद्घात के कितने भेद हैं व कौन–कौन से हैं नाम बताओ?

उत्तर– समुद्घात के सात भेद हैं, जो निम्नांकित हैं– (१) केवली समुद्घात (२) आहारक समुद्घात (३) तैजस समुद्घात (४) वैक्रियक समुद्घात (५) कषाय समुद्घात (६) वेदना समुद्घात (७) मारणान्तिक समुद्घात। इनका विशेष कथन आगे अन्य भागों में करेंगे, वहाँ अथवा अन्यत्र ग्रंथों में देखें।

प्रश्न २७. मूक केवली किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– जिन अरिहंत परमेष्ठियों की अरिहंत अवस्था में दिव्य ध्वनि नहीं खिरती, पुनः वे चार अघातिया कर्मों को नष्ट करके सिद्धत्व को प्राप्त हुए हैं, वे अरिहंत भगवान मूक केवली कहलाते हैं।

प्रश्न २८. अन्तः कृत केवली किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– जिन मुनिराज ने अन्तर्मुहूर्त में ही चार घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान एवं उसी अन्तर्मुहूर्त में चार अघातिया कर्मों को नष्ट कर सिद्धत्व को प्राप्त किया हो वे अन्तःकृत केवली कहलाते हैं।

प्रश्न २९. क्या श्री अन्त: कृतकेवली जी के बारे में कुछ अन्य विशेषता भी हैं ?

उत्तर– हाँ ! प्रत्येक तीर्थंकर के काल में १०–१० अन्तःकृत केवली होते हैं, जो उपसर्गादि को समभावों से सहन कर केवलज्ञान व निर्वाण को अन्तर्मुहूर्त में ही प्राप्त कर लेते हैं, जिनके पुनीत जीवन चरित्र का कथन १०वें अन्तःकृद्दशांग में किया जाता है।

प्रश्न ३०. भगवान महावीर स्वामी के तीर्थकाल में जो १० (दस) अन्तःकृत केवली हुए उनके नाम क्या–क्या थे? बताने की कृपा करें।

उत्तर– नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, बलीक, किष्किंबल, पालम्ब, अम्बष्ठ ये दस अंतःकृत केवली भगवान महावीर स्वामी के काल में हुए।

प्रश्न ३१. उपसर्ग केवली किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– जिन मुनिराजों ने घोरोपसर्ग को समता से सहनकर अपने परिणामों को अत्यन्त विशुद्ध बनाया, जिसके फलस्वरूप चार घातिया कर्मों को नष्ट कर उस उपसर्गकाल में ही केवलज्ञान को प्राप्त किया वे केवली जिन उपसर्ग केवली जिन कहलाते हैं।

प्रश्न ३२. उन श्री केवली भगवंतों के नाम बताईये जिन्होंने उपसर्गकाल में ही केवलज्ञान को प्राप्त किया?

उत्तर– उपसर्ग काल में केवल ज्ञान को प्राप्त करने वाले अनन्त केवली हुए उनमें से कुछेक नाम

निम्न हैं– गुरुदत्त, सुकौशल, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, धर्मघोष, संजयंत मुनिराज.....इत्यादि।

–

प्रश्न ३३. अनुबद्ध केवली किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– जिन मुनिराजों को बंधे हुए क्रम से केवलज्ञान की प्राप्ति हुई हो वे मुनिराज अनुबद्ध केवली जिन कहलाते हैं। जैसे– श्री महावीर स्वामी के निर्वाण के दिन ही श्री इन्द्रभूति गौतम स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, इन्द्रभूति गौतम स्वामी के निर्वाण दिवस के दिन ही श्री सुधर्माचार्य को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और श्री सुधर्माचार्य जी के निर्वाण के समय ही श्री जम्बू स्वामी जी को केवलज्ञान प्रकट हुआ, अतः उक्त तीनों केवली अनुबद्ध केवली कहलाये।

प्रश्न ३४. जो पंचमकाल में निर्वाण अवस्था को प्राप्त हुए, क्या वे ही अनुबद्ध केवली कहलाते है ?

उत्तर– नहीं ! जो पंचमकाल में निर्वाण अवस्था को प्राप्त हुए, इसलिए अनुबद्ध केवली नहीं कहलाये, अपितु अनुबद्ध क्रमानुसार निर्वाण अवस्था व केवल ज्ञान को प्राप्त किया इसलिए अनुबद्ध केवली कहलाये, इसमें काल की कोई अपेक्षा नहीं। काल कोई सा भी हो। यद्यपि इन्द्रभूति गौतम, श्री सुधर्माचार्य एवं श्री जम्बू स्वामी उक्त महापुरुषों को निर्वाण की प्राप्ति पंचम काल में ही हुई थी।

प्रश्न ३५. क्या पंचमकाल में भी मोक्ष की प्राप्ति संभव है ?

उत्तर– यद्यपि मोक्ष की प्राप्ति चतुर्थ काल में ही होती है, किन्तु हुण्डावसर्पिणी काल दोष के कारण कुछ महापुरुषों को मोक्ष की प्राप्ति तृतीय व पंचमकाल में भी हुई, किन्तु जिन महापुरुषों ने पंचमकाल में केवलज्ञान व मोक्ष को प्राप्त किया उनका जन्म भी चतुर्थकाल में ही हुआ था। पंचमकाल में जन्मे व्यक्ति को उसी भव से मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रश्न ३६. पंचमकाल में जन्मे व्यक्ति को उसी भव से मोक्ष की प्राप्ति क्यों नहीं हो सकती ?

उत्तर– पंचमकाल में जन्मे व्यक्ति के उत्तम संहनन नहीं होता अपितु हीन संहनन की प्राप्ति होती है, हीन संहनन से उत्कृष्ट फल / मोक्ष की प्राप्ति असंभव है। उत्तम संहनन से (वज्रवृषभनाराच संहनन से) युक्त व्यक्ति आज भी मोक्ष जा सकता है, यद्यपि विदेह क्षेत्र से आगत कोई भी चरम शरीरी महापुरुष यहाँ से भी मोक्ष जा सकता ।

प्रश्न ३७. यदि पंचमकाल में मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है, तो फिर इस काल में दीक्षा लेना व्यर्थ ही कहलाया ?

उत्तर– नहीं ! भले ही पंचमकाल में जन्मे व्यक्ति को इस काल में मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, मोक्ष मार्ग की प्राप्ति तो होती ही है। पंचम काल के भी कुछ मुनिराज समीचीन साधना करके, लौकान्तिक देवों में उत्पन्न होकर अगले भव से मोक्ष प्राप्त करेंगे तथा उत्तम समाधि को प्राप्त

होने वाले मुनिराज दो या तीन भव में, जघन्य समाधि को प्राप्त करने वाले मुनिराज-सात या आठ भव में नियम से मुक्ति को प्राप्त करेंगे। अतः साधना करना व्यर्थ नहीं है क्योंकि, समीचीन साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती।

प्रश्न ३८. पंचमकाल में अंतिम केवली कौन हुए एवं तृतीय व चतुर्थ काल के भी प्रथम व अंतिम तीर्थंकर केवली का नाम बताओ?

उत्तर- पंचमकाल में इस भरत क्षेत्र में अंतिम केवली श्रीधर स्वामी हुए, जिनका कि मोक्ष कुण्डलपुर से हुआ था। अंतिम अनुबद्ध केवली जम्बूस्वामी थे, चतुर्थकाल में अंतिम तीर्थंकर केवली महावीर स्वामी हुए। तृतीय काल में प्रथम व अंतिम तीर्थंकर केवली श्री ऋषभदेव हुए एवं तृतीयकाल में प्रथम केवली अनंतवीर्य हुए। चतुर्थकाल में प्रथम तीर्थंकर केवली अजितनाथ हुए। हुण्डावसर्पिणी काल दोष के प्रभाव से अनंतवीर्य, बाहुबली व ऋषभदेव तृतीयकाल में ही मोक्ष चले गये।

प्रश्न ३९. आपने सात प्रकार के केवली (अरिहंत परमेष्ठी) बताते समय श्रुत केवली का कथन क्यों नहीं किया?

उत्तर- श्रुत केवली अरिहंत परमेष्ठी नहीं अपितु उपाध्याय परमेष्ठी कहलाते हैं, वे द्वादशांग के पाठी होते हैं, उन्होंने अभी चार घातिया कर्मों में से किसी भी कर्म का पूर्ण क्षय नहीं किया, वे अभी छद्मस्थ हैं, केवली (सर्वज्ञ) नहीं, अतएव सात प्रकार के केवलियों (अरिहंत परमेष्ठियों) को कहते समय उनका नामोल्लेख नहीं किया।

प्रश्न ४०. छद्मस्थ किसे कहते हैं ? श्रुत केवली को छद्मस्थ क्यों कहा?

उत्तर- जिन जीवों के ज्ञान व दर्शन गुण - ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्म से आवरणित (ढके हुए) हैं, वे जीव छद्मस्थ कहलाते हैं। श्रुत केवली के अभी ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्म नष्ट नहीं हुए, अतः वे छद्मस्थ हैं, द्वादशांग के पाठी व पूर्ण श्रुतज्ञानी होने से वे सम्पूर्ण द्रव्यों की कुछ पर्यायों को परोक्ष में जानते हैं, सम्पूर्ण द्रव्यों के ज्ञाता होने से उन्हें उपचार से श्रुत केवली शब्द से सम्बोधन किया जाता है।

प्रश्न ४१. श्री अरिहंत परमेष्ठी जी के कम से कम एवं अधिक से अधिक कितने मूलगुण होते हैं ? संक्षेप में भेद बताने की कृपा करें।

उत्तर- श्री अरिहंत परमेष्ठी जी के कम से कम चार (अर्थात् अनन्त चतुष्टय) मूल गुण होते हैं एवं अधिक से अधिक तीर्थंकर केवली की अपेक्षा ४६ (छियालीस) मूल गुण होते हैं, जो रूढ़िवशात् सर्व अरिहंतों के प्रचलित हैं । वे ४६ (छियालीस) मूल गुण इस तरह हैं-१० जन्म के अतिशय + १० केवलज्ञान के अतिशय +१४ देव कृत अतिशय + ८ प्रातिहार्य + ४ अनन्त चतुष्टय = ४६ मूलगुण ।

प्रश्न ४२. अतिशय किसे कहते हैं ?

उत्तर– संसारी प्राणियों के लिए आश्चर्य उत्पन्न करने वाली घटनाऐं अतिशय कहलाती हैं, चमत्कार लौकिक दृष्टि से आश्चर्यान्वित करते हैं किन्तु, अतिशय परमार्थ के जनक होते हैं। तीर्थंकर आदि महापुरुषों के शरीर में कुछ ऐसी विशेषताएं होती हैं जो जन सामान्य में नहीं हो सकतीं तथा केवलज्ञान के पश्चात् स्वाभाविक व देवकृत कुछ ऐसे पारमार्थिक कार्य (चमत्कार) किये जाते हैं जिन्हें देखकर व सुनकर भव्य जीव कल्याण मार्ग के प्रति गतिशील हो जाते हैं।

प्रश्न ४३. जन्म के दश अतिशय कौन–कौन से हैं ? छंद के माध्यम से सुनाओ?

उत्तर– **हिन्दी काव्य**

अतिशय रूप सुगंध तन, नाहिं पसेव निहार ।
प्रिय हित वचन अतुल बल, रुधिर श्वेत आकार ।।
लक्षण सहसरु आठ तन, समचतुस्र संठान ।
वज्रवृषभ नाराच जुत, ये जनमत दस जान ।।

अथवा निम्न छंद भी आप कण्ठस्थ कर सकते हैं –

संस्कृत काव्य

नित्यं निःस्वेदत्वं निर्मलता क्षीर गौर रुधिरत्वं च ।
स्वाद्याकृति संहनने सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम् ।।३८।। नं. भ.
अप्रिमत वीर्यता च, प्रिय हित वादित्व–मन्यदमित–गुणस्य ।
प्रथिता दश विख्याता स्वतिशय–धर्मा स्वयंभुवो देहस्य ।।३९।। नं. भ.

प्रश्न ४४. जन्म के दश अतिशयों की अलग–अलग व्याख्या करने की कृपा करें ?

उत्तर– जन्म के दश अतिशयों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है

(१) **अतिशय रूप–** अत्यंत सुन्दर, मनोहारी रूप होना, (कामदेव का रूप काम वासना को जागृत करने वाला होता है किन्तु, तीर्थंकरों का रूप सहज चित्ताकर्षक होता है।)

(२) **सुगंधित तन–** शरीर में से स्वाभाविक, निर्मल, निर्विकार सुगंधी का होना।

(३) **पसेव रहित शरीर–** तीर्थंकरों के शरीर में से कभी भी पसीना नहीं निकलता।

(४) **अनिहार–** मल, मूत्र, श्वेल, श्लेष्मा, सिंघाड़ आदि से रहित अवस्था का होना।

(५) **प्रिय हित वचन–** प्रिय, हितकर, सीमित, स्व–पर शांति कारक वाणी का बोलना।

(६) **अतुल बल–** शरीर में वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से चक्रवर्ती व इन्द्रादिकों से भी अधिक शक्ति होना अर्थात् अतुलनीय बल युक्त शरीर।

(७) **श्वेत रुधिर–** प्राणी मात्र के प्रति करुणा, दया, वात्सल्य, क्षमा, प्रेम आदि गुणों के कारण शरीरगत खून का दूधवत सफेद होना। श्वेत रुधिर कणिकाओं की शरीर में बहुलता, रक्त कणिकाओं का अभाव। रक्त रुधिर कणिकाएँ क्रोध, बैर, ईर्ष्या, निर्दयता, संक्लेशता, क्रूरता, रोगोत्पादक की द्योतक होती हैं।

(८) **समचतुरस्र संस्थान–** शरीर में विद्यमान सर्व आंगोपांगों का प्रमाणानुसार ही सम होना, ४–४ के चार स्थानों (अंग–उपांगों) का माप सम होना। ।

(९) **वज्रवृषभ नाराच संहनन–** जिसमें वज्र की हड्डियाँ, वज्र की कीलें, वज्र की बैष्ठन हों ऐसे सर्व श्रेष्ठ संहनन का होना, जिसके बिना क्षायिक सम्यक्त्वादि किसी भी गुण की प्राप्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

(१०) **सहस्र अठोत्तर शुभ लक्षणों का होना–** शरीर में एक हजार आठ शुभ लक्षण होते हैं, जिसमें १०८ शुभ लक्षण व ९०० व्यंजन होते हैं। जैसे–श्रीवत्स, शंख, सरोज, स्वास्तिक, चक्र, सरोवर, चामर, सिंहासन, छत्र, तोरण, तुरग, सूर्य, चन्द्र इत्यादि।

प्रश्न ४५. केवलज्ञान के दश अतिशय कौन–कौन से हैं, छंद के माध्यम से सुनाओ?

उत्तर– **संस्कृत काव्य**

गव्यूति शत चतुष्टय सुभिक्षता–गगन गमन–मप्राणिवधः ।
भुक्त्युपसर्गाभाव–श्चतुरास्यत्वं च सर्व विद्येश्वरता ।।४०।। नं. भ.
अच्छायत्वमपक्ष्म स्पन्दश्च सम प्रसिद्ध–नख केशत्वम् ।
स्वतिशय–गुणा भगवतो घाति–क्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव ।।४१।। नं. भ.

हिन्दी काव्य

योजन शत इक में सुभिख, गगन गमन मुख चार ।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहिं कवलाहार ।।
सब विद्या ईश्वरपनो, नाहिं बढ़े नख केश ।
अनिमिष दृग छाया रहित, दश केवल के वेश ।।

प्रश्न ४६. केवलज्ञान के उक्त दस अतिशयों को संक्षेप में समझाने की कृपा करें?

उत्तर– केवल ज्ञान के दश अतिशयों की संक्षिप्त व्याख्या निम्नलिखित है

(१) **सौ योजन में सुभिक्ष–** जहाँ अरिहन्त भगवान अपने समवशरण सहित विराजमान होते हैं वहाँ सौ–सौ योजन तक सुभिक्ष रहता है, दुर्भिक्ष वहाँ नहीं होता।

(२) **गगन गमन–** केवलज्ञानोपरान्त अरिहंत परमेष्ठी, सामान्य पृथ्वी से ५,००० धनुष या २०,००० हाथ ऊँचे विराजमान होते हैं और आकाश में गमन करते हैं। पृथ्वी पर गमन नहीं करते हैं।

(३) **चतुर्मुख–** केवलज्ञानोपरान्त श्री अरिहंत परमेष्ठी जी के परम औदारिक शरीर हो जाने से एक ही मुख चारों दिशाओं से दिखायी देता है, तब ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके चार मुख हैं।

(४) **नहिं अदया–** जहाँ श्री अरिहंत परमेष्ठी जी विराजमान होते हैं, वहाँ किसी प्राणी के मन में अदया का भाव नहीं रहता, जन्म–जात बैर रखने वाले, क्रूर, तिर्यंच भी मित्रता से रहते हैं, शेर–गाय, सांप–नेवला, चूहा–बिल्ली, हरिण–मृगेन्द्र, सारंग–अहि, श्वान–शुक इत्यादि जानवर भी समवशरण में मित्रवत् ही बैठते हैं।

(५) **उपसर्ग नहिं–** केवल ज्ञानोपरान्त श्री अरिहंत परमेष्ठी जी पर किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं होता एवं समवशरण में विराजमान जीवों पर भी उपसर्ग नहीं होता।

(६) **कवलाहार का अभाव–** केवलज्ञान के उपरान्त श्री अरिहंत परमेष्ठी जी कवलाहार (ग्रास का आहार) नहीं करते, वहाँ अन्नाहार का सर्वथा अभाव है । जो अन्नाहार करता है वह परमात्मा नहीं हो सकता। श्री अरिहंत परमेष्ठी जी नोकर्म आहार ही करते हैं। कुछ (श्वेताम्बर) मतावलम्बी अज्ञानतावश ऐसा मानते हैं कि केवली कवलाहारी होते हैं किन्तु, उनकी यह मान्यता सर्वथा मिथ्या है।

(७) **सर्व विद्येश्वर–** श्री अरिहंत परमेष्ठी जी सम्पूर्ण ऋद्धियों (६४) के एवं विद्याओं के अधिपति होते हैं क्योंकि, उनके पास क्षायिक (अनंत) ज्ञान होता है।

(८) **नहिं बढ़े नख केश–** केवल ज्ञानोपरान्त श्री अरिहंत परमेष्ठी जी के नख, केश नहीं बढ़ते, जितने होते हैं, उतने ही केवली अवस्था में रहते हैं।

(९) **अनिमिष दृग–** श्री अरिहंत परमेष्ठी जी की कभी पलक नहीं झपकती, केवलज्ञानोत्पत्ति के समय जो स्थिति थी (नासा के अग्रभाग पर दृष्टि) सदैव वही स्थिति रहती है।

(१०) **छाया रहित शरीर–** श्री अरिहंत परमेष्ठी का शरीर जो छद्मस्थ अवस्था में औदारिक था वही केवली अवस्था में परमौदारिक अवस्था को प्राप्त हो जाता है, अतएव उसकी आभा करोड़ों सूर्यों से भी अधिक हो जाती है, इसलिए उनके उस स्फटिक मणि के समान निर्मल शरीर की परछाईं नहीं पड़ती।

प्रश्न ४७. देव कृत चौदह अतिशयों को छन्द के माध्यम से बताने की कृपा करें।

उत्तर– देव कृत चौदह अतिशय निम्नांकित हैं

देव रचित हैं चार दश, अर्द्ध मागधी भास ।
आपस माहिं मित्रता, निर्मल दिशि आकाश ।।
होत फूल फल ऋतु सवै, पृथ्वी कांच समान ।
चरणकमलतल(व्है)कमलदल,नभसेजय-जयवान।।
मंद सुगंध वयार पुनि, गंधोदक की वृष्टि ।
भूमि विषै कटकं नहिं, हर्ष मयी सब सृष्टि ।।
धर्म चक्र आगे चलै, पुनि वसु मंगल सार ।
अतिशय श्री अरिहंत के, ये चौंतीस प्रकार ।।

प्रश्न ४८. देव कृत चौदह अतिशयों का संक्षिप्त विवेचन करने की कृपा करें।

उत्तर– **देवकृत चौदह अतिशय –**

(१) **अर्द्ध मागधी भाषा–** अर्द्ध मागधी भाषा (प्राकृत भाषा) में दिव्य ध्वनि सभी जीवों को समवशरण में ४ कोश तक सुनाई देती है।

(२) आपस माहिं मित्रता– जन्म जात विरोधी, क्रूर व हिंसक जानवर भी अपने बैर भाव को भूल जाते हैं, प्रत्येक जीव दूसरे जीव के प्रति मित्रवत् भाव (निःस्वार्थ हित, कल्याण व परोपकार का भाव) रखते हैं, समवशरण में हस्ती-सिंह, मृग-मृगेन्द्र, अहि-नकुल, सर्प-गरूड़, मार्जार-श्वान, विलाव-मूषक इत्यादि जीव भी मित्रवत् प्रेम भाव व मातृवत् वात्सल्य भाव से युक्त होकर बैठते हैं।

(३) निर्मल दिशि– चारों दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) व चारों विदिशाओं (ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य) एवं ऊर्ध्व, अधः दिशा सहित दशों दिशाओं का-आँधी, तूफान, मेघ, गर्जना, ओला वृष्टि, अति वृष्टि, अनावृष्टि, दिशा दाह, दुर्दिन (कोहरा) कल्पान्त काल पवनोद्धत से रहित होना।

(४) निर्मल आकाश– आकाश का मेघ गर्जन, उल्कापात, विद्युत पतन, ग्रह संग्राम, शोला, अग्नि, धूम, बालू, खारा जल, विष आदि की वृष्टि से रहित होना।

(५) होत फूल फल ऋतु सवै– सभी ऋतुओं के फल-फूलों का एक साथ आ जाना, जहाँ भी जिनेन्द्र देव विराजें या विहार करें वहाँ सम्पूर्ण वृक्ष फल-फूलों से लद जाते हैं।

(६) **पृथ्वी काँच समान–** जिनेन्द्र भगवान जहाँ विराजमान होते हैं या विहार करते हैं, वहाँ एक-एक योजन तक चारों दिशाओं में पृथ्वी कांच के समान निर्मल (कंटक, कंकड़, पत्थर, काँच खण्ड, तृण आदि से रहित) व पुष्प सम मृदु भासती है।

(७) **चरण कमल तल कमल दल–** श्री तीर्थंकर केवली जब विहार करते हैं तब देव समूह जिनेन्द्र देव के चरण तले स्वर्णमयी कमल समूह की (७-७ की ७ पंक्ति, आगे, पीछे, दाँये, बाँये, एक मध्य की पंक्ति जहाँ चरण विराजमान हैं, अत: १५-१५ कमलों की १५ पंक्ति हो जाती है, कुल कमल २२५ की प्रत्येक कदम बढ़ाते समय) रचना करते हैं।

(८) **नभ से जय-जय वान–** आकाश में देव समूह द्वारा जिनेन्द्र देव की जयकार के मंगल घोष होना।

(९) **मंद सुगंध बयार पुनि–** शीतल मंद-मंद सुगंधित समीर का बहना, जो समीर रोगियों के असाध्य रोगों को भी दूर करने में समर्थ होती है।

(१०) **गंधोदक की वृष्टि–** भव्य जीवों के भवाताप को हरने वाली, सुगंधित समीर के साथ ही, सुगंधित सूक्ष्म जल बिन्दुओं (जो कि सुखद व शांति-कर होती हैं) की वृष्टि होती है।

(११) **भूमि विषे कंटक नहिं–** जहाँ श्री तीर्थंकरादि केवली भगवान विराजते हैं या विहार करते हैं, वह समस्त भूमि उस काल में पवन कुमार देवों द्वारा कंटक व तृणादि से रहित कर दी जाती है।

(१२) **हर्ष मयी सब सृष्टि–** श्री तीर्थंकरादि केवली भगवान जहाँ विराजते हैं या विहार करते हैं, वहाँ सर्व सृष्टि / वसुधा / चराचर जीव युक्त पृथ्वी हर्षमय/ आनन्दित हो जाती है, जो आनंद समवशरण में मिलता है, वह विश्व में अन्यत्र असंभव है।

(१३) **धर्म चक्र आगे चलै–** मिथ्यात्व, अज्ञान व असंयम के अंधकार को विनष्ट करने वाला, धर्म मार्ग की प्रभावना करने वाला, धर्मचक्र श्री तीर्थंकरादि केवली भगवान के आगे-आगे चलता है।

(१४) **अष्ट मंगल द्रव्यों का होना–** श्री तीर्थंकरादि केवली भगवान जब समवशरण में विराजते हैं अथवा विहार करते हैं उस समय अष्ट मंगल द्रव्य साथसाथ रहते हैं। वे अष्ट मंगल द्रव्य निम्नांकित हैं- (१) दर्पण (२) कलश (३) झारी (४) पंखा (५) चमर (६) स्वास्तिक (७) ध्वजा (८) छत्र ।

प्रश्न ४९. आठ प्रातिहार्य कौन-कौन से होते हैं ? छन्द के माध्यम से बताते हुए संक्षेप में व्याख्या करने की कृपा करें।

उत्तर– **दिव्य तरुः सुर–पुष्प–सुवृष्टि–दुर्न्दभिरासन योजन घोषौ।**

आतप–वारण–चामर–युग्मे, यस्य विभाति च मण्डल तेजः।।११।।(शां. भ.)

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।

तीन छत्र सिर पै लसैं, भामण्डल पिछवार।।

दिव्य ध्वनि मुखतैं खिरै, पुष्प वृष्टि सुर होय।

ढोरैं चौंसठ चँमर यख, वाजै दुन्दुभि जोय।।

(१) **अशोक वृक्ष–** जिसके दर्शन मात्र से प्राणियों का शोक दूर हो जाता है, ऐसा मणिमय अशोक वृक्ष जिनेन्द्र भगवान के शरीर की अवगाहना से सात गुना ऊंचा होता है।

(२) **सिंहासन छविदार–** अशोक वृक्ष के समीप में रत्नमयी सिंहासन पर विराजमान जिनेन्द्रदेव या तीर्थंकर भगवान ऐसे सुशोभित होते हैं, मानों सहस्रों रश्मियों से युक्त दिवाकर ही क्षितिज की प्राची में उदित हुआ हो।

(३) **तीन छत्र सिर पर लसैं–** श्री केवली भगवान के सिर के ऊपर चन्द्रमा व सूर्य की कांति को भी तिरस्कृत करने वाले, तीन लोक की ऐश्वर्यता को प्रकट करने वाले तीन छत्र (नीचे सबसे बड़ा, मध्य में मध्यम, ऊपर सबसे छोटा) अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक के ईश्वरत्व स्वामी पने के प्रतीक परम शोभायमान होते हैं।

(४) **भामण्डल पिछवार–** केवली भगवान के शरीर से विनिर्गत विशुद्ध वर्गणाओं का, विशिष्ट कांति/प्रभा का एक आभामण्डल होता है, जिसे भामण्डल, प्रभा मण्डल या आभामण्डल कहते हैं । उस भामण्डल में भव्य जीव को अपने सात भव (३ भव भूत काल के, एक वर्तमान का एवं तीन आगामी भव प्रतिबिम्बित होते हैं, उन्हें वे स्पष्ट रूप से) दिखायी देते हैं। जैसे दर्पण में वर्तमान पर्याय युक्त पदार्थ झलकते हैं।

(५) **दिव्य ध्वनि मुखतैं खिरै–** (खिरै ध्वनि सर्वांग से) श्री केवली अरिहंत परमेष्ठी जी को दिव्य ध्वनि खिरते समय ओंठ, दंत, तालु, रसना आदि में कोई क्रिया नहीं होती है, मेघ गर्जन अथवा मृदंग ध्वनि के समान सहजोत्पन्न, सर्वांग निष्पन्न दिव्य ध्वनि भव्य जीवों को स्वर्गापवर्ग का मार्ग दर्शाने वाली, वस्तु स्वरूप की प्रतिपादक दिव्य ध्वनि खिरती है।

(६) **पुष्पवृष्टि सुर होय–** समवशरण में विराजमान जिनेन्द्र भगवान के ऊपर मंदार, सुन्दर, नमेरू, सुपारिजात, संतानकादि पुष्पों की वर्षा देवों द्वारा की जाती है, जो अनंत गुणों की प्रतीक है।

(७) **ढौरैं चौंसठ चँमर यख–** समवशरण में विराजमान जिनेन्द्र भगवान के दोनों ओर ३२–३२

चमर यक्ष देव ढोरते हैं । चक्रवर्ती के ऊपर १६-१६ चमर, अर्धचक्री पर ८-८ चमर दोनों ओर, महामण्डलेश्वर पर ४-४, मण्डलेश्वर पर २-२ चमर अर्द्ध मण्डलेश्वर या अन्य राजाओं पर १-१ चमर दोनों ओर से ढोरे जाते हैं।

(८) **बाजै दुन्दुभि जोय–** किन्नर जाति के देवों द्वारा समवशरण में पाप विध्वंसक, मंगल कारक, जय-जयकार ध्वनि एवं मंगल गानों का होना।

प्रश्न ५०. अरिहंत परमेष्ठी के पर्यायवाची नाम बताते हुए यह बताएं कि प्रथम पद का उच्चारण करने से, जाप या ध्यान करने से कितना फल प्राप्त होता है ?

उत्तर- अरिहंत परमेष्ठी को-सयोग केवली, अयोग केवली, सकल परमात्मा, केवली, सर्वज्ञ, सकल दर्शी, वीतरागी जिन, अरुहंत, अरहंत, अर्हत्, अर्द्धनारीश्वर, जिन देव, जिनेन्द्र भगवान, नो संसारी, परम गुरु, भगवान, परमहितोपदेशी, वीतमोही जिन, वीतद्वेषी जिन, जन्मातीत, निर्दोष जिन, इत्यादि नामों से सम्बोधित किया जा सकता है।

णमोकार मंत्र के प्रथम पद का भावों की परम विशुद्धि के साथ उच्चारण करने से, जाप करने से, चिंतन एवं ध्यान करने से अनंतोपवास करने के बराबर फल की प्राप्ति होती है, इसका पूर्ण फल कहने में छदमस्थ जीव असमर्थ होते हैं, इसका फल अचिन्त्य है, सातिशय पुण्यास्रव, पाप निर्जरा व संवर, पुण्य बंध एवं परम्परा से मोक्ष का कारण है। कुछ लोगों का कहना है कि णमोकार मंत्र के एक पद/ प्रथम पद की जाप देने से ५० सागर काल तक भोगे जाने वाले पापों का भी क्षय हो सकता है।

******

अज्जेज्ज सेसवे विज्जं, धणमज्जेज्ज जोव्वणे
तहा बुड्ढत्तणे पुण्णं, देहं झाणेण उज्झदु ।।

बाल्यावस्था में विद्या अर्जन करनी चहिए, यौवनावस्था में धन अर्जन करना चाहिए, वृद्धावस्था में पुण्यार्जन तथा ध्यान के द्वारा देह को त्यागना चाहिए

अज्ज सक्किदी (आर्य संस्कृति) - ७३

अध्याय–३

सिद्ध परमेष्ठी

प्रश्न १. श्री सिद्ध परमेष्ठी जी किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो अष्ट कर्मों के बन्धनों से मुक्त हैं, अष्ट महागुणों से सहित हैं, लोकाग्र में स्थित हैं, नित्य व अविनाशी हैं वे सिद्ध परमेष्ठी हैं।

–नि० सा०/आ.भगवन् कुन्द–कुन्द स्वामी

अथवा– सर्व कर्मों से रहित, अष्ट गुणों से युक्त, चरम शरीर से किंचित न्यून, नित्य, निरंजन, निर्विकार, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से संयुक्त, लोकाग्र निवासी, लोकालोक को जानने देखने वाले, निजात्मा में अनन्तकाल तक लीन रहने वाले सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं।

– आ० भगवन् वीरसेन स्वामी/धवला जी

प्रश्न २. कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो आत्मा को संसार में सुख–दुःख दें, वे कर्म कहलाते हैं अथवा जीव के राग–द्वेषादि भावों का निमित्त पाकर जो कार्माण वर्गणाऐं आत्म प्रदेशों के साथ बंध को प्राप्त हो जाती हैं, वे कर्म कहलाती हैं अथवा जो संसार का कारण हैं एवं आत्मा को बाँधने वाला बंधन ही कर्म कहलाता है।

प्रश्न ३. कर्म के मुख्यतया कितने भेद होते हैं और कौन–कौन से नाम बतायें ?

उत्तर– कर्म के मुख्य रूप से तीन भेद होते हैं–

(१) द्रव्य कर्म, (२) भाव कर्म, (३) नो कर्म।

प्रश्न ४. द्रव्य कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जीव के राग–द्वेषादि भावों के निमित्त से जो पौद्गलिक कार्माण वर्गणाऐं कर्म रूप अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं, वे ही द्रव्य कर्म कहलाते हैं अथवा ज्ञानावरणादि पौद्गलिक कर्मों का समूह ही द्रव्य कर्म है।

प्रश्न ५. द्रव्य कर्म के मुख्य कितने और कौन–कौन से भेद हैं ?

उत्तर– द्रव्य कर्म के मुख्यतया दो भेद हैं– (१) घातिया कर्म, (२) अघातिया कर्म।

प्रश्न ६. घातिया कर्म किसे कहते हैं ? वे कितने व कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– जो जीव के अनुजीवी गुणों का घात करते हैं, वे घातिया कर्म कहलाते हैं। उनके मुख्यतया दो भेद हैं– (१) देश घाती (२) सर्व घाती। द्वितीय प्रकार से घातिया कर्मों के चार भेद हैं– (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण (३) मोहनीय (४) अन्तराय।

प्रश्न ७. अनुजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो गुण जीव के साथ सदैव विद्यमान रहते हैं, कभी–भी किसी भी दशा में उनका अभाव नहीं होता, विभाव परिणमन अवश्य हो सकता है, वे अनुजीवी गुण कहलाते हैं। **जैसे–** ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इत्यादि।

प्रश्न ८. अघातिया कर्म किसे कहते हैं ? वे कितने व कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– जो कर्म जीव के प्रतिजीवी गुणों का घात करते हैं, वे अघातिया कर्म कहलाते हैं, उनके चार भेद हैं– (१) वेदनीय कर्म (२) आयु कर्म (३) नाम कर्म (४) गोत्र कर्म।

प्रश्न ९. द्रव्य कर्मों की मूल व उत्तर कुल कितनी प्रकृतियाँ होती है ?

उत्तर– द्रव्य कर्म की ८ (आठ) मूल प्रकृतियाँ एवं १४८ (एक सौ अड़तालीस) उत्तर प्रकृतियाँ होती हैं। मूल प्रकृतियों में चार घातिया एवं चार अघातिया कर्म होते हैं। उत्तर प्रकृतियों में ४७ (५ +९ + २८ +५) घातिया कर्म प्रकृति एवं १०१ (२ +४ + ९३ + २) अघातिया कर्म प्रकृति हैं।

प्रश्न १०. देश घाति व सर्व घाति किसे कहते हैं ? इनके कितने–कितने भेद हैं ?

उत्तर– जीव के अनुजीवी गुणों का एक देश (अंशतः) में घात करने वाले देशघाति एवं सम्पूर्ण रूप से घात करने वाले सकल घाति कर्म कहलाते हैं। देशघाति कर्म की २६ (छब्बीस) प्रकृतियाँ एवं सर्व घाति कर्म की २१ (इक्कीस) प्रकृतियाँ हैं।

प्रश्न ११. क्या द्रव्य कर्म के अन्य भी भेद हैं, यदि हाँ तो कौन–कौन से बताने की कृपा करें

उत्तर– हाँ ! द्रव्य कर्म के विपाक (कर्म फल) की अपेक्षा से अन्य चार भेद भी हैं– (१) भव विपाकी (२) क्षेत्र विपाकी (३) पुद्गल विपाकी (४) जीव विपाकी।

प्रश्न १२. भव विपाकी कर्म किसे कहते हैं ? कितने भेद हैं ? एवं कौन–कौन से? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– जिन कर्मों का फल जीव को नियतकाल तक एक ही भव में रोके रहना होता है, वे कर्म भव विपाकी कर्म कहलाते हैं, उनके चार भेद हैं– (१) मनुष्यायु (२) देवायु (३) तिर्यंचायु (४) नरकायु।

प्रश्न १३. क्षेत्र विपाकी कर्म किसे कहते हैं ? इसके कितने व कौन–कौन से भेद हैं ? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– जिन कर्मों का फल क्षेत्र विशेष में या विग्रह गति में प्राप्त होता हो, उन्हें क्षेत्र विपाकी कर्म कहते हैं। इनके चार भेद हैं– (१) मनुष्यगत्यानुपूर्वी (२) देव गत्यानुपूर्वी (३) तिर्यंचगत्यानुपूर्वी (४) नरकगत्यानुपूर्वी। इन प्रकृतियों का उदय सदैव विग्रह गति में ही आता है।

प्रश्न १४. विग्रह गति किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ? एवं कौन–कौन से? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– वि = रहित, ग्रह = शरीर। औदारिक, वैक्रियक, आहारक शरीर को छोड़कर नये शरीर को ग्रहण करने के लिए अथवा पाँचों शरीरों (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्मण) को छोड़कर जो मुक्त जीव की गति होती है, उसे विग्रह गति कहते हैं।

इस विग्रह गति के चार भेद हैं –

(१) ऋजु या इषु गति– यह बाण की तरह सीधी होती है। यह गति संसारी व मुक्त दोनों प्रकार के जीवों के होती है।

(२) पाणिमुक्ता गति– हाथ से छोड़े हुए पत्थर की गति के समान एक मोड़ सहित गति पाणि मुक्तागति कहलाती है।

(३) लांगलिका गति– किसान के हल के समान दो मोड़े से युक्त गति।

(४) गोमूत्रिका गति– तीन मोड़ा से युक्त विग्रह गति गोमूत्रिका गति कहलाती है।

प्रश्न १५. पुद्गल विपाकी कर्म किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं एवं कौन–कौन से बतलाने की कृपा करें ?

उत्तर– जिस कर्म का फल पुद्गल (शरीर) में प्राप्त हो उसे पुद्गल विपाकी कर्म कहते हैं–पुद्गल विपाकी ६२ (बासठ) कर्म प्रकृतियाँ हैं जो निम्न हैं–

पाँच शरीर + पाँच बंधन + पाँच संघात + छह संस्थान + तीन आंगोपांग + छह संहनन + स्पर्शादि बीस + बारह अन्य प्रकृतियाँ (१. निर्माण, २. आतप, ३. उद्योत, ४. स्थिर, ५. अस्थिर, ६. शुभ, ७. अशुभ, ८. प्रत्येक, ९. साधारण, १०. अगुरू लघु, ११. उपघात, १२. परघात) ये ६२ (बासठ) प्रकृतियाँ पुद्गल विपाकी हैं।

प्रश्न–१६. जीव विपाकी कर्म किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ? एवं कौनकौन से नाम बतलाने की कृपा करें?

उत्तर– जिन कर्मों का फल जीव में प्राप्त हो, वे जीव विपाकी कर्म प्रकृतियाँ कहलाती हैं, वे ७८

(अट्ठहत्तर) हैं, जो कि निम्नांकित हैं –

ज्ञानावरण की पाँच + दर्शनावरण की नौ + मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियाँ + अन्तराय कर्म की पाँच + गोत्र कर्म की दो + वेदनीय कर्म की दो + नाम कर्म की सत्ताईस (१. तीर्थंकर प्रकृति, २. उच्छवास, ३. बादर, ४. सूक्ष्म, ५. पर्याप्त, ६. अपर्याप्त, ७. सुस्वर, ८. दुःस्वर, ९. आदेय, १०. अनादेय, ११. यशस्कीर्ति, १२. अयशकीर्ति, १३. त्रस, १४. स्थावर, १५. प्रशस्त विहायोगति, १६. अप्रशस्त विहायोगति, १७. सुभग, १८. दुर्भग, १९. नरकगति, २०. तिर्यंच गति, २१. देव गति, २२. मनुष्य गति, २३. एकेन्द्रिय जाति, २४. द्विइन्द्रिय जाति, २५. त्रिन्द्रिय जाति, २६. चतुरिन्द्रिय जाति, २७. पंचेन्द्रिय जाति = ये ७८ (अट्ठत्तर) जीव विपाकी प्रकृतियाँ हैं।

प्रश्न १७. भाव कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जीव के मोह, राग, द्वेषादि विकृत / विभाव मय परिणाम ही भाव कर्म कहलाते हैं। बिना भावों के द्रव्यकर्मों का आस्रव, बन्ध, संवर व निर्जरा आदि नहीं होते। अतः भाव ही मुख्यतया संसार व मोक्ष के कारण हैं।

प्रश्न १८. भाव कर्मों के कितने व कौन–कौन से भेद हैं ?

उत्तर– संसारी जीवों के जितने प्रकार के परिणाम होते हैं, उतने ही प्रकार के (असंख्यात लोक प्रमाण/ अनंत) भाव कर्मों के भेद होते हैं। मोह, राग, द्वेष, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, कषाय, प्रमाद, अव्रतादि जनित परिणाम ही भाव कर्म हैं।

प्रश्न १९. नोकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– किंचित कर्म को नोकर्म कहते हैं, अथवा ३ (तीन) शरीर व ६ (छह) पर्याप्ति रूप परिणमित नोकर्म वर्गणा या आहार वर्गणा के समूह को नोकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०. नोकर्म के कितने भेद होते हैं ? और कौन–कौन से बताने की कृपा करें?

उत्तर– नोकर्म के सामान्यतया ९ (नौ) भेद होते हैं। ३ शरीर (औदारिक, वैक्रियक, आहारक) +६ पर्याप्तियाँ (आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा एवं मन) = ९ नोकर्म हैं।

प्रश्न २१. शरीर किसे कहते हैं ? कितने और कौन–कौन से भेद हैं ?

उत्तर– जिस कर्म के उदय से आत्मा के शरीर की रचना होती है, वह शरीर नाम कर्म है, अथवा जिस कर्म के उदय से आहार वर्गणा के पुद्गल तथा तैजस् और कार्मण वर्गणा के पुद्गल स्कन्ध शरीर योग्य परिणामों के द्वारा परिणत हुए जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं, उस कर्म स्कन्ध की शरीर संज्ञा हैं। वे शरीर पाँच होते हैं– (१) औदारिक, (२) वैक्रियक, (३) आहारक, (४) तैजस्, (५) कार्माण शरीर।

प्रश्न २२. उपरोक्त पाँचों शरीरों की परिभाषाएं संक्षेप में बताने की कृपा करें?

उत्तर– **पाँच शरीर –**

(१) औदारिक शरीर– उदार शब्द का अर्थ स्थूल है, उदार शब्द से "ठक्" प्रत्यय के माध्यम से औदारिक शब्द बनता है। मनुष्यों और तिर्यंचों के स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

(२) वैक्रियक शरीर– अणिमा आदि आठ गुणों के ऐश्वर्य के सम्बन्ध से एक, अनेक, छोटा, बड़ा आदि नाना प्रकार का शरीर बनाना विक्रिया है, विक्रिया जिस शरीर का प्रयोजन है, वह वैक्रियक शरीर है। **उदाहरण**– देवों व नारकीयों का शरीर।

(३) आहारक शरीर– सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान करने के लिए अथवा असंयम को दूर करने की इच्छा से प्रमत्त संयत जिस शरीर की रचना करता है, वह आहारक शरीर है अथवा सूक्ष्म पदार्थ के निर्णय के लिए या संयम की रक्षा के लिए छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से एक हाथ का जो धवल वर्ण का अत्यन्त सुंदर मनुष्याकार पुतला निकलता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं।

(४) तैजस् शरीर– जो दीप्ति का कारण है उसे तैजस् शरीर कहते हैं।

(५) कार्माण शरीर– आठ कर्मों का पिण्ड अथवा कर्मों का कार्य कार्माण शरीर हैं।

प्रश्न २३. पर्याप्ति किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ? और कौन–कौन से नाम बताएं?

उत्तर– आहार वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनो वर्गणा के परमाणुओं को शरीर, इन्द्रिय आदि रूप परिणत करने वाली शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्ति के छह भेद हैं–

(१) आहार पर्याप्ति (२) शरीर पर्याप्ति (३) इन्द्रिय पर्याप्ति (४) श्वासोच्छवास पर्याप्ति (५) भाषा पर्याप्ति (६) मनः पर्याप्ति।

प्रश्न २४. उपरोक्त छहों पर्याप्तियों को संक्षेप में समझाने की कृपा करें ?

उत्तर– ६: पर्याप्तियाँ

(१) आहार पर्याप्ति– शरीर नाम कर्म के उदय से जो परस्पर अनन्त परमाणुओं के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए हैं और जो आत्मा से व्याप्त आकाश क्षेत्र में स्थित हैं, ऐसे पुद्गल विपाकी आहार वर्गणा सम्बन्धी पुद्गल स्कन्ध, कर्म स्कन्ध के सम्बन्ध से कथंचित मूर्तपने को प्राप्त हुए हैं, आत्मा के साथ समवाय रूप से सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं, उन खल भाग और रस भाग के भेद से परिणमन करने की शक्ति से बने हुए आगत पुद्गल स्कन्धों की प्राप्ति को आहार पर्याप्ति कहते हैं।

(२) शरीर पर्याप्ति– तिल की खली के समान उस खल भाग को हड्डी आदि कठिन अवयव रूप

से और तिल-तेल के समान रस भाग को रस, रूधिर, वसा, वीर्य आदि द्रव अवयव रूप से परिणमन करने वाले औदारिकादि तीन शरीरों की शक्ति से युक्त पुद्गल स्कन्धों की प्राप्ति को शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

(३) **इन्द्रिय पर्याप्ति–** योग्य देश में स्थित रूपादि से युक्त पदार्थों के ग्रहण करने रूप शक्ति की उत्पत्ति के निमित्तभूत पुद्गल प्रचय की प्राप्ति को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

(४) **श्वासोच्छवास पर्याप्ति–** उच्छ्वास और नि:श्वास रूप शक्ति की पूर्णता के निमित्तभूत पुद्गल प्रचय की प्राप्ति को आन पान (श्वासोच्छवास) पर्याप्ति कहते हैं।

(५) **भाषा पर्याप्ति–** भाषा वर्गणा के स्कन्धों के निमित्त से चार प्रकार की भाषा रूप से परिणमन करने की शक्ति के निमित्तभूत नोकर्म पुद्गल प्रचय की प्राप्ति को भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

(६) **मनः पर्याप्ति–** अनुभूत अर्थ के स्मरण रूप शक्ति के निमित्तभूत मनोवर्गणा के स्कन्धों से निष्पन्न पुद्गल प्रचय को मनः पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न २५. सिद्ध परमेष्ठी के कितने मूल गुण होते हैं ? एवं कौन-कौन से नाम बताने की कृपा करें?

उत्तर- सिद्ध परमेष्ठी के आठ मूल गुण होते हैं जो निम्नांकित हैं -

गाथा– सम्मत्त -णाण-दसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।

अगुरु-लघु-मव्वावाहं अट्ठ गुणा होंति सिद्धाणं।। (सि० भ०)

सोरठा– समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।

सूक्षम वीरज वान, निराबाध गुण सिद्ध के।।

अर्थात्– सम्यक्त्व, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अनंत वीर्य, अव्याबाधत्व ये आठ मूल गुण सिद्धों के हैं।

प्रश्न २६. किस-किस कर्म के क्षय से कौन-कौन सा गुण प्राप्त होता है ?

उत्तर-

मोहनीय कर्म के क्षय से	-	अनन्त सुख / सम्यक्त्व
ज्ञानावरणी कर्म के क्षय से	-	अनंत ज्ञान / केवल ज्ञान
दर्शनावरणी कर्म के क्षय से	-	अनंत दर्शन / केवल दर्शन
अंतराय कर्म के क्षय से	-	अनंत वीर्य / शक्ति
वेदनीय कर्म के क्षय से	-	अव्याबाधत्व
गोत्र कर्म के क्षय से	-	अगुरुलघुत्व

नाम कर्म के क्षय से – सूक्ष्मत्व

आयु कर्म के क्षय से – अवगाहनत्व

प्रश्न २७. चेतन द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिसमें ज्ञान व दर्शन चेतना पाई जाती है वह चेतन है एवं जिसका अस्तित्व हो या सत्ता होती है वह द्रव्य है । जीव की सत्ता अनादि है अनंतकाल तक रहेगी, चेतना का कभी जन्म, मरण नहीं होता, सभी द्रव्य सत् रूप में हैं, थें, रहेंगे । सत् द्रव्य का लक्षण है। द्रव्य से ही विश्व है।

प्रश्न २८. सत् किसे कहते हैं ?

उत्तर– उत्पाद, व्यय, धौव्य युक्त अवस्था ही सत् है अर्थात् जिसमें उत्पत्ति, विनाश व कुछ अंश में शाश्वतता पाई जाती है, वही सत् हैं, सत् ही द्रव्य है।

प्रश्न २९. उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर– नई पर्याय की उत्पत्ति का नाम **उत्पाद** है, पुरानी पर्याय के विनाश का नाम **व्यय** है एवं द्रव्य की जो अवस्था या शक्ति सदैव / त्रैकालिक रूप में द्रव्य के साथ रहती है, उसे **ध्रौव्य** कहते हैं।

जैसे– किसी स्वर्णकार ने एक स्वर्ण कुण्डल को मिटाकर मुकुट बना दिया, तो इसमें मुकुट पर्याय (अवस्था) की उत्पत्ति ही उत्पाद है, कुण्डल पर्याय का नष्ट होना व्यय है एवं कुण्डल व मुकुट दोनों पर्यायों में स्वर्ण ज्यों का त्यों रहा वह ध्रौव्य है।

प्रश्न ३०. पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर– परिणमन का नाम ही पर्याय है, द्रव्य व गुणों में सदैव प्रतिसमय परिणमन चलता है क्योंकि, कोई भी द्रव्य कूटस्थ नहीं होता, अतः प्रत्येक द्रव्य व गुणों में परिणमन चलता है, यह परिणमन ही पर्याय है।

प्रश्न ३१. पर्याय के मुख्य रूप से कितने भेद होते हैं ? और कौन–कौन से समझाने की कृपा करें?

उत्तर– पर्याय के मुख्य रूप से दो भेद हैं क्योंकि, पर्याय द्रव्य व गुण दोनों की ही होती हैं। अत: (१) व्यंजन पर्याय(द्रव्य की पर्याय को) एवं (२) अर्थ पर्याय (गुणों की पर्याय को)। पुनः इन दोनों भेदों के (१) स्वभाव व (२) विभाव की अपेक्षा से दो–दो भेद होते हैं। दूसरी अपेक्षा से पर्याय के चार भेद–इस प्रकार भी होते हैं। (१) सादि– सान्त पर्याय (२) सादि–अनन्त पर्याय (३) अनादि–सान्त पर्याय (४) अनादि अनन्त पर्याय ।

प्रश्न ३२. पाँचों परमेष्ठियों में सबसे बड़े परमेष्ठी कौन से हैं ? तथा क्यों ?

उत्तर– पाँचों परमेष्ठियों में सबसे बड़े परमेष्ठी सिद्ध परमेष्ठी हैं, क्योंकि सिद्ध परमेष्ठियों ने समस्त कर्मों

को नष्ट कर दिया है, वे लोक के अग्रभाग में विराजमान हैं, कृत्य-कृत्य हैं, नित्य, निरञ्जन, निष्कर्म, निकल, परम शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं, अतएव सिद्ध परमेष्ठी मुक्तात्मा हैं और पाँचों परमेष्ठियों में सबसे बड़े हैं।

प्रश्न ३३. श्री सिद्ध परमेष्ठी जी पाँचों परमेष्ठियों में बड़े हैं, फिर भी श्री अरिहंत परमेष्ठियों को प्रथम नमस्कार (णमोकार मंत्र में) क्यों किया जाता है ?

उत्तर- अरिहंत परमेष्ठी संसार में रहते हुए संसारी जीवों को कल्याण का मार्ग प्रतिपादित करते हैं, उन्हीं के माध्यम से हमें आत्मा का, आत्म स्वभाव का एवं सिद्धों का ज्ञान होता है। सिद्ध परमेष्ठी तो शरीर रहित व सर्व कर्म रहित हो लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं, अपनी आत्मा में अनंतकाल के लिए लीन हैं। इसलिए अरिहंत परमेष्ठी संसारी जीवों के परमोपकारी होने से उन्हें प्रथम नमस्कार किया है।

प्रश्न ३४. लोक किसे कहते हैं ? तथा ये कितने व कौन-कौन से हैं ?

उत्तर- **"लुक्यन्ते जीवादयाः पदार्थाः यस्मिन सः लोकः"** अर्थात् जीवादि छह द्रव्य, नव पदार्थ, सप्त तत्वादि जिसमें देखे जाते हैं वह लोक कहलाता है, उस लोक के सामान्यतया ३ भेद होते हैं। (१) अधोलोक (२) मध्य लोक / तिर्यक् लोक (३) ऊर्ध्व लोक।

प्रश्न ३५. कृत्य-कृत्य किसे कहते हैं ?

उत्तर- कृत्य-कृत्य का अर्थ है जो कुछ करने योग्य कार्य था, उसे सिद्धपरमेष्ठी कर चुके, अब उनके लिए कोई भी कार्य शेष नहीं रहा अर्थात् वे सिद्ध परमेष्ठी समस्त कर्मों का अंत कर चुके हैं, यही संसार में करने योग्य कार्य है।

प्रश्न ३६. श्री सिद्ध परमेष्ठी जी लोक के अग्रभाव पर विराजमान क्यों होते हैं ?

उत्तर- चार घातिया कर्मों से रहित श्री अरिहंत परमेष्ठी जी सामान्य भूमि से ५,००० धनुष (२०,००० हाथ) ऊँचे पहुँच जाते हैं किन्तु, सिद्ध परमेष्ठी जी तो समस्त कर्मों के भार से रहित हैं अतः संसार (लोक) के अग्रभाग पर पहुँच गये। सर्वोत्तम व्यक्ति या वस्तु सदैव सर्वोत्तम या सर्वोच्च स्थान पर ही होते हैं । कर्मों के भार से दबा हुआ जीव संसार में भटकता रहता है, संसार सागर में डूब जाता है, किन्तु जो वस्तु हल्की होती है, कर्मों के भार रूपी मिट्टी के लेप से रहित तुम्बी की तरह वह सिद्धात्मा जल की उपरी सतह के समान लोक के अग्रभाग (सिद्धालय) मे अनंत काल के लिए शाश्वत विराजमान हो जाता है ।

प्रश्न ३७. मुक्त जीवों का गमन ऊर्ध्व दिशा में ही क्यों होता है ? तथा वे लोक के अग्रभाग के आगे अनन्त आकाश में क्यों नहीं जाते ?

उत्तर- ऊर्ध्वगमन जीव का स्वभाव है, श्री सिद्ध परमेष्ठियों ने अपने स्वभाव को प्राप्त कर लिया है

अत: वे ऊर्ध्व गमन ही करते हैं, जैसे निर्वात् अग्नि शिखा, मिट्टी के लेप से रहित सूखी तूमड़ी, एरण्ड बीज फूटने पर ऊर्ध्व दिशा में ही गमन करते हैं। उसी प्रकार मुक्तात्मा-स्वभाव से, कर्म लेप हटने से, एरण्ड बीज की तरह, कर्म बंधन टूटने से एवं कुम्हार (कुंभकार) के चाक की तरह पूर्व संस्कार से (आत्मा भी) ऊर्ध्व गमन करती है, लोकाकाश के आगे अलोकाकाश है, वहाँ केवल आकाश ही आकाश है, धर्म द्रव्य का अभाव होने से वहाँ जीव आदि कोई भी द्रव्य गति नहीं कर सकता, बिना निमित्त के कभी कोई कार्य नहीं होता।

प्रश्न ३८. श्री सिद्ध परमेष्ठी जी लोक के अग्र भाग पर कहाँ विराजमान होते हैं ?

उत्तर- श्री सिद्ध परमेष्ठी जी लोक के अग्रभाग में सिद्ध शिला के ऊपर सिद्ध क्षेत्र में रहते हैं, निश्चय नय से वे अपने आत्म प्रदेशों में रहते हैं।

प्रश्न ३९. सिद्ध शिला का विस्तार कितना है ? एवं उसका आकार किस प्रकार का है ?

उत्तर- सिद्ध शिला (ईषत् प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी) का विस्तार ४५,००,००० (पैंतालीस लाख योजन) लम्बाई एवं ८ (आठ) योजन मोटाई है। उसका क्षेत्र ३,६०,००,००० (तीन करोड़ साठ लाख) वर्ग योजन है।

प्रश्न ४०. सिद्ध शिला का आकार किस प्रकार का है ? एवं सिद्ध परमेष्ठियों का आकार किस प्रकार है ?

उत्तर- सिद्ध शिला का आकार कुछ आचार्य छत्राकार एवं कुछ आचार्य चन्द्राकार बताते हैं, दोनों ही बातें अभी प्रमाणभूत हैं, कालान्तर में प्रत्यक्षदर्शी महापुरुषों से पूछना चाहिए। श्री सिद्ध परमेष्ठियों के आत्म प्रदेशों का आकार जिस अवस्था से मोक्ष गये उसी प्रकार का होता है, अशरीरी होने से उन्हें निराकार भी कहा जाता है।

प्रश्न ४१. श्री सिद्ध परमेष्ठी जी ४५,००,००० (पैंतालीस लाख) योजन क्षेत्र में ही क्यों रहते हैं ? अधिक में क्यों नहीं ?

उत्तर- सिद्धत्व की (मुक्त अवस्था की) प्राप्ति ढ़ाई द्वीप एवं दो समुद्रों से ही हो सकती है, अन्यत्र क्षेत्र या अधिक क्षेत्र से नहीं, ढाई द्वीप दो समुद्रों का विस्तार ४५,००,०००० (पैंतालीस लाख) योजन है, अतः सिद्ध क्षेत्र का विस्तार भी ४५,००,००० (पैंतालीस लाख) योजन है।

प्रश्न ४२. सिद्धत्व (मुक्तावस्था) की प्राप्ति ढ़ाई द्वीप में से ही क्यों हो सकती है ? अन्य द्वीपों में से क्यों नहीं ?

उत्तर- मनुष्य ढाई द्वीप के बाहर जा नहीं सकता, उसका जन्म-मरण व गति केवल ढाई द्वीप व २ समुद्र में ही संभव है, अन्यत्र उसका बाल भी नहीं जा सकता तथा बिना मनुष्य पर्याय प्राप्त किये सकल संयम की प्राप्ति नहीं हो सकती, बिना सकल संयम के कर्म क्षय नहीं हो सकते,

बिना कर्मों का क्षय किये मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः सिद्ध जीव की गति, ऋजु ऊर्ध्व गति ही होती है।

प्रश्न ४३. मध्यलोक में कितने द्वीप व समुद्र होते हैं ? तथा ढाई द्वीप व दो समुद्रों के नाम क्या हैं?

उत्तर- मध्यलोक में असंख्यात द्वीप व असंख्यात समुद्र हैं तथा जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड व पुष्करार्द्ध द्वीप (आधा पुष्करवर द्वीप) ये ढाई द्वीप एवं लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र ये दोनों समुद्रों के नाम हैं, इसी प्रकार असंख्यातों द्वीपों व समुद्रों के भी शुभ नाम हैं।

प्रश्न ४४. ढाई द्वीप व दो समुद्रों का विस्तार ४५,००,००० (पैंतालीस लाख) योजन किस प्रकार होता है ?

उत्तर- जम्बू द्वीप का विस्तार एक लाख योजन है, आगे के द्वीपों व समुद्रों का विस्तार पूर्व के द्वीप व समुद्र से दूना-दूना है, इस प्रकार ढाई द्वीप व दो समुद्रों का विस्तार ४५,००,००० योजन होता है। जम्बू द्वीप + लवण समुद्र + धातकी खण्ड + कालोदधि समुद्र + पुष्करार्द्ध द्वीप का क्रमशः विस्तार १,००,००० + ४,००,००० + ८,००,००० + १६,००,००० + १६,००,००० = ४५,००,००० योजन होता है।

प्रश्न ४५. एक योजन का विस्तार कितने कोश, मील या कि. मी. के बराबर होता है ?

उत्तर- एक लघु योजन का प्रमाण ४ कोश / ८ मील १२.८ कि.मी. के बराबर होता है, किन्तु यहाँ लघु योजन नहीं महायोजनों का कथन है, अतः उस योजन का प्रमाण २,००० (दो हजार) कोश है। अर्थात् १ योजन = २,००० कोश या ४,००० मील या ६,४०० किमी.। मनुष्य लोक (ढाई द्वीप) का प्रमाण ४५,००,०० X २,००० = ९,००,००,००,००० कोश। या १८,००,००,००,००० (१८ अरब मील) अथवा २८,८०,००,००,००० = २८ अरब ८० करोड़ किलोमीटर के बराबर है, आगे के द्वीप (सभी असंख्यातों द्वीप) व समुद्र अपने-अपने पूर्व के द्वीप या समुद्र से दूने-दूने हैं।

प्रश्न ४६. श्री सिद्ध परमेष्ठियों की संख्या कितनी है ?

उत्तर- श्री सिद्ध परमेष्ठी जी की संख्या अनन्तानन्त है, छमस्थ कभी भी उस संख्या का पार नहीं पा सकते, प्रत्यक्ष दर्शी ही जान सकते हैं, वह संख्या-अक्षय अनन्त या शाश्वत है।

प्रश्न ४७. सिद्ध परमेष्ठी संसार में लौट के कब आयेंगे ?

उत्तर- श्री सिद्ध परमेष्ठी जी (मुक्त जीव) संसार में लौट कर अब कभी भी नहीं आयेंगे, क्योंकि संसार के कारणभूत सभी कर्मों (द्रव्य कर्म, भावकर्म व नोकर्म इन सभी कर्मों) को वे नष्ट कर चुके हैं, अपनी आत्मा की भी कर्म बंधन की शक्ति नष्ट कर चुके हैं, अत: वे कभी लौट कर संसार में नहीं आयेंगे। जैसे जला हुआ बीज (राख) कभी बोने से उत्पन्न नहीं होता वैसे ही सिद्ध

जीवों की संसार में कभी उत्पत्ति नहीं होती।

प्रश्न ४८. सिद्ध परमेष्ठी के पर्यायवाची नाम कौन–कौन से जिनके उच्चारण करने से सिद्धों का ही बोध होता है ?

उत्तर– सिद्ध परमेष्ठी के पर्यायवाची नाम निम्न हैं– सिद्ध परमेष्ठी, निकल परमात्मा, अशरीरी, मुक्त जीव, मुक्तिरमा के कंत, निष्कर्म, परम शुद्धात्मा, सिद्ध केवली, निराकार, लोकाग्र निवासी, कृत्य–कृत्य, निरंजन, नित्य, अविकारी, अनन्त, शिव इत्यादि।

प्रश्न ४९. क्या सिद्ध परमेष्ठियों में कोई भेद भी संभव है ? यदि हाँ तो वे भेद किन–किन अपेक्षाओं से संभव है ?

उत्तर– यद्यपि सिद्ध अवस्था को प्राप्त सभी जीव गति, जाति आदि के भेदों के कारण का अभाव होने से भेद व्यवहार से रहित हैं, तथापि उनमें कथंचित् भेद भी संभावित हैं– क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बोधित, बोधित बुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्प–बहुत्व इनके द्वारा सिद्धजीवो के भेद जानने के योग्य हैं।

प्रश्न ५०. सिद्ध परमेष्ठियों में कितने व कौन–कौन से भाव पाये जाते हैं ?

उत्तर– सिद्ध परमेष्ठियों में क्षायिक व पारणामिक दो मुख्य भाव पाये जाते हैं । क्षायिक भाव के नौ भेद हैं– क्षायिक दर्शन, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य तथा पारणामिक भाव में से एक जीवत्व भाव। भेद विवक्षा से सिद्धों में १० भाव पाये जाते हैं अथवा ५ भाव पाये जाते हैं।

******

विज्जल्यी हु गुणाकंखी, अप्पाहारी, णिरालसो
विणयी बंभचारी य, वेग्गिओ परिस्समी ।।

विद्यर्थी गुणाकांक्षी, अल्पाहारी आलस्य रहित,
विनयी, बह्मचारी वैराग्ययुक्त और परिश्रमी हो
रट्ठ संति–महाजण्णो (राष्ट्रशान्ति भहायज्ञ) – ४५

अध्याय–४

आचार्य परमेष्ठी

प्रश्न १. आचार्य परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो साधु पंचाचारों का पालन स्वयं करते हैं, अन्य साधुओं से भी पंचाचारों का पालन कराते हैं, शिष्यों के संग्रह व निग्रह में कुशल होते हैं एवं जो आत्मा पर अनुशासन करते हुए संघ पर अनुशासन, चतुर्विध संघ का कुशलता पूर्वक परिपालन / संचालन करते हैं उन्हें आचार्य परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न २. मुनि किसे कहते हैं ?

उत्तर– विषय–कषाय आरम्भ परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान तप में लीन संत को ही मुनि कहते हैं।

प्रश्न ३. पंचाचार किसे कहते हैं ?

उत्तर– पाँच प्रकार के समीचीन आचरण को ही पंचाचार कहते हैं, पंचाचार ही धर्म है, पंचाचारों का समीचीन पालन करने वाला ही मोक्ष मार्गी होता है, पंचाचार से रहित मोक्ष मार्गी नहीं होता।

प्रश्न ४. पंचाचार कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– (१) दर्शनाचार (२) ज्ञानाचार (३) चारित्राचार (४) तपाचार (५) वीर्याचार।

प्रश्न ५. दर्शनाचार किसे कहते हैं ?

उत्तर– सम्यक् दर्शन का आठ अंग सहित, पच्चीस दोषों से रहित पालन करना ही दर्शनाचार (सम्यक्त्वाचरण) है।

प्रश्न ६. सम्यक् दर्शन (सम्यक्त्व) किसे कहते हैं ?

उत्तर– सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, धर्म पर दृढ़ आस्था रखना ही सम्यक् दर्शन है अथवा जीवादि प्रयोजनभूत सात तत्वों, नव पदार्थों, षड्द्रव्यों, पंचास्तिकायों पर एवं उनके स्वरूपों पर यथार्थ श्रद्धान रखना ही सम्यक् दर्शन कहलाता है।

प्रश्न ७. अंग किसे कहते हैं ? एवं सम्यक् दर्शन के आठ अंग कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– अंग का अर्थ है हिस्सा, भाग, अंश। जिस प्रकार शरीर में आठ अंग होते हैं, उसी प्रकार सम्यक् दर्शन के भी आठ अंग होते हैं, जो कि निम्नांकित हैं– (१) निशंकित (२) निकांक्षित (३) निर्विचिकित्सा (४) अमूढ़ दृष्टि (५) उपगूहन (६) स्थितिकरण (७) वात्सल्य (८) प्रभावना।

प्रश्न ८. सम्यक्त्व (सम्यक् दर्शन) के २५ दोष कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– सम्यक्त्व के २५ दोष निम्नांकित हैं– ८ (आठ) शंकादि दोष + ८ (आठ) मद +६ (छह) अनायतन + ३ (तीन) मूढ़ता = २५ (पच्चीस दोष)।

प्रश्न ९. सम्यक्त्वाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर– सम्यक्त्व का यथाशक्ति निर्दोष (२५ दोषों से रहित एवं ८ अंगों सहित) पालन करना सम्यक्त्वाचरण चारित्र है तथा सम्यक्त्वाचरण चारित्र का पालन करने वाला व्यक्ति अन्याय, अनीति, अभक्ष्य सेवन व सप्त व्यसन सेवन का त्यागी होता है।

प्रश्न १० ज्ञानाचार किसे कहते हैं ?

उत्तर– सम्यक् ज्ञान का ८ (आठ) अंगों सहित व ३ (तीन) दोषों से रहित पालन करना अर्थात् समीचीन ज्ञान का, पाँच प्रकार का स्वाध्याय करना ज्ञानाचार कहलाता है।

प्रश्न ११. सम्यक् ज्ञान के आठ अंग कौन–कौन से हैं ? नाम बताने की कृपा करें?

उत्तर– समीचीन ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते हैं, उसके आठ अंग निम्नलिखित हैं– (१) शब्दाचार (२) अर्थाचार (३) उभयाचार (४) कालाचार (५) विनयाचार (६) उपधानाचार (७) बहुमानाचार (८) अनिह्नवाचार। (सम्यक्त्व व सम्यक् ज्ञान का विशेष कथन अन्य भागों में देखें)

प्रश्न १२. सम्यक्ज्ञान के तीन दोष कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– सम्यक्ज्ञान के तीन दोष निम्नांकित हैं –

(१) संशय– उभय पक्षीय (दोनों प्रकार का) अनिर्णीत ज्ञान संशय ज्ञान कहलाता है–जैसे–यह सोना है या पीतल, अथवा यह मानव है या ठूँठ।

(२) अनध्यवसाय (विभ्रम)– जिज्ञासा से रहित अनिर्णीत ज्ञान विभ्रम या अनध्यवसाय कहलाता है, जैसे–रास्ते में चलते समय पैर में कुछ चुभ गया–किन्तु निर्णय नहीं हुआ कि क्या स्पर्श हुआ या चुभा ? जानने की जिज्ञासा भी नहीं– "कुछ होगा"।

(३) विमोह– विपरीत ज्ञान को विमोह या विपर्यय ज्ञान कहते हैं। जैसे–सीप को चाँदी या चाँदी को सीप, स्फटिक मणि को काँच या काँच को हीरा, सोने को पीतल या पीतल को सोना, सुख के मार्ग को दुःख का या दुःख के मार्ग को सुख का मार्ग मान लेना इत्यादि।

प्रश्न १३. सम्यक् ज्ञान की परिभाषा क्या है ? संक्षेप में समझाने की कृपा करें ?

उत्तर– सम्यक् दर्शन के साथ होने वाले ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते हैं अथवा अधिकता व न्यूनता से रहित, वस्तु के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक, मिथ्या मान्यताओं का विध्वंसक, समीचीनता का बोध कराने वाला ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान कहलाता है ।

प्रश्न १४. स्वाध्याय किसे कहते हैं ? उसके पाँच भेद कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत, गणधर परमेष्ठी द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बराचार्य द्वारा रचित शास्त्रों का निज कल्याण हेतु अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। अथवा आर्ष मार्गीय शास्त्रों के माध्यम से अपनी आत्मा का अध्ययन करना ही स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय के ५ भेद निम्नांकित हैं–(१) वाचना (२) पृच्छना (३) अनुप्रेक्षा (४) आम्नाय (५) धर्मोपदेश।

प्रश्न १५. सम्यक्ज्ञान के पाँच भेद कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– (१) मति ज्ञान (२) श्रुत ज्ञान (३) अवधि ज्ञान (४) मनःपर्यय ज्ञान (५) केवलज्ञान एवं तीन भेद मिथ्याज्ञान के होते हैं – (१) कुमति ज्ञान (२) कुश्रुत ज्ञान (३) कुअवधि / विभंगावधि ज्ञान।

प्रश्न १६. चारित्राचार किसे कहते हैं ?

उत्तर– अशुभ कार्यों से निवृत्ति एवं शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना ही चारित्राचार (सम्यक् चारित्र) कहलाता है अथवा सम्यग्दर्शन व सम्यक् ज्ञान के साथ देश विरत या प्रमत्त संयतादि गुणस्थानों में अविनाभावी रूप से रहने वाला चारित्र ही सम्यक् चारित्र कहलाता है अथवा पाँचों पापों का पूर्ण त्याग, कषायों का शमन एवं इन्द्रिय निरोध करके आत्मा में लीन हो जाना ही सम्यक् चारित्र कहलाता है।

प्रश्न १७. सम्यक् चारित्र के मुख्य कितने भेद हैं ?

उत्तर– सम्यक् चारित्र के मुख्य रूप से दो भेद हैं– (१) देश चारित्र (२) सकल चारित्र।

द्वितीयापेक्षा–(१) व्यवहार चारित्र (२) निश्चय चारित्र।

प्रश्न १८. देश चारित्र किसे कहते हैं एवं कितने भेद हैं ?

उत्तर– पाँचों पापों का एक देश त्याग करना अर्थात् स्थूल पापों का त्याग करने रूप प्रवृत्ति जहाँ होती है, वह देश चारित्र है। इसका पालन श्रावक करता है। ५ अणुव्रत +४ शिक्षाव्रत + ३ गुण व्रत = १२ व्रत एवं ११ (ग्यारह) प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य भी भेद संभव है।

प्रश्न १९. सकल चारित्र किसे कहते हैं व इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर– हिंसादि पाँच पापों का पूर्णतः (मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से) त्याग कर देना एवं पाँच महाव्रतादि का पालन करना सकल चारित्र कहलाता है। इसका पालन मुनिराज करते हैं। इसके पाँच भेद हैं– (१) सामायिक (२) छेदोपस्थापना (३) परिहार विशुद्धि (४) सूक्ष्म साम्पराय (५) यथाख्यात चारित्र।

प्रश्न २०. चारित्राचार (चरण) के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर- चारित्राचार (चरण) के तेरह (१३) भेद होते हैं-**५ (पाँच) महाव्रत** (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह),**५ (पाँच) समिति** (ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण, व्युत्सर्ग), **३ (तीन) गुप्ति** (मन, वचन, काय) ये तेरह प्रकार का चारित्र (चरण) कहलाता है।

प्रश्न २१. तपाचार किसे कहते हैं ? इसके कितने व कौन-कौन से भेद हैं ?

उत्तर- इच्छाओं का निरोध करना तप कहलाता है, उसके मुख्य रूप से दो भेद होते हैं- (१) बहिरंग तप एवं (२) अंतरंग तप।

प्रश्न २२. बहिरंग तप किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ? कौन-कौन से नाम बताओ?

उत्तर- जो तप बाहर से दिखायी दें अथवा जो शरीर के माध्यम से किये जायें अथवा जिस तप को मिथ्यादृष्टि (बहिरात्मा) भी कर सके, उन्हें बहिरंग तप कहते हैं। इसके छह भेद हैं, जो निम्नांकित हैं -

(१) अनशन- चारों प्रकार के आहार का नियमित या अनियत समय के लिए त्याग करना।

(२) अवमौदर्य (ऊनोदर)- भूख से कम भोजन करना। एक चावल का आहार करना उत्कृष्ट ऊनोदर है एवं भूखसे एक ग्रास कम लेना जघन्य ऊनोदर है।

(३) वृत्ति परिसंख्यान- किसी प्रकार का नियम / संकल्प लेकर आहार चर्या को निकलना कि अमुक प्रकार की विधि मिलेगी तो आहार करूँगा अन्यथा नहीं, यह वृत्ति परिसंख्यान तप है।

(४) रस परित्याग- नमक, दूध, घी, मीठा, शक्कर, तेल इत्यादि षट् रसों में से या खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा, कषायला इन पंच रसों में से एक-दो-तीन-चार-पाँच या सभी रसों का नियत काल तक या जीवन भर त्याग कर देना रस परित्याग तप है ।

(५) विविक्त शय्यासन- एकान्त में साधना करते हुए, आसान, शयन सम्बन्धी कष्टों को समता से सहन करना।

(६) काय क्लेश- कर्म निर्जरा हेतु, शरीर निर्ममत्वता की बृद्धि के लिए, शरीर को, शीत उष्णादि कष्ट देते हुए भी परिणामों में समता भाव रखना कायक्लेश तप है ।

प्रश्न २३. अंतरंग तप किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं एवं कौन-कौन से है ?

उत्तर- जो अंतरंग से, अंतरंग में किया जाये, जिसे बाहर के व्यक्ति न देख सकें, जिसे दूसरों को न दिखाया जा सके एवं जो अंतरात्मा द्वारा ही किया जा सके, वह अंतरंग तप है। इसके छह भेद हैं जो निम्नांकित हैं -

(१) **प्रायश्चित–** प्रमादवश, अज्ञानतावश, कषाय वश हुए अपराधों की शुद्धि/ शोधन हेतु किया गया या लिया गया दण्ड प्रायश्चित कहलाता है अथवा प्रायः + चित्त जिसका अर्थ है, चित्त की शुद्धि।

(२) **विनय–** सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप एवं इन गुणों से युक्त महापुरुषों के सामने नम्रता युक्त वृत्ति करना, पूज्य पुरुषों का मन, वचन, काय से आदर सम्मान करना विनय कहलाता है। इसके साथ उपचार विनय का भी विज्ञ पुरुषों द्वारा सदैव पालन किया जाता है।

(३) **वैय्यावृत्ति–** चतुर्विध संघ (ऋषि, मुनि, यति, अनगार अथवा मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) की ज्ञान दान, अभयदान, उपकरण दान, औषधि दान व आहार दानादि के द्वारा अथवा किसी भी प्रकार साधक की साधना में सहायक वनकर उसकी साधना वृद्धिंगत कराना भी वैय्यावृत्ति है।

(४) **स्वाध्याय–** आत्म कल्याण हेतु जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत शास्त्रों का पठन–पाठन, चिन्तन–म नन आदि.करना स्वाध्याय नाम का तप कहलाता है।

(५) **व्युत्सर्ग–** समस्त बाह्य परिग्रह एवं अंतरंग परिग्रह का त्याग करके आत्म चिंतन करना / शरीरादि में भी निर्ममत्व रहकर आत्मलीन होना व्युत्सर्ग है।

(६) **ध्यान–** समस्त असद् विकल्पों को त्याग कर मन को सद् विकल्पों / भावनाओं में लीन करना, आत्मावलोकन में चित्त की एकाग्रता या तीनों योगों की समीचीन निर्विकल्प क्रियाशीलता ही ध्यान कहलाता है।

प्रश्न २४. वीर्याचार किसे कहते हैं ?

उत्तर– निज शक्ति को न छिपाकर उक्त पंचाचारों या संयम का पालन करना एवं शिष्यों से या निजाश्रित भव्य जीवों से भी उनकी शक्ति के अनुसार (शक्ति से न अधिक न कम) पंचाचार या संयमादि का पालन कराना वीर्याचार कहलाता है।

प्रश्न २५. आचार्य परमेष्ठी संग्रह व निग्रह में कुशल होते हैं ? यहाँ संग्रह से आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर– संग्रह का अर्थ होता है–इकट्ठा करना। जैसे–हंस दूध मिश्रित जल में से दूध–दूध पी लेता है, पानी को छोड़ देता है, उसी प्रकार श्री आचार्य परमेष्ठी जी भी भद्र परिणामी, कषायोपशमी, संवेगी, वैरागी, धर्मज्ञ, आत्म कल्याणार्थी महानुभावों को निकट भव्य जानकर कल्याण हेतु मार्ग दर्शन एवं अपनी शरण देते हैं, इसमें उनका प्रयोजन कल्याण का होता है, स्वकीय ख्याति, पूजा, लाभ एवं सेवादि का नहीं होता। यही संग्रह करना कहलाता है।

प्रश्न २६. उक्त वाक्य में निग्रह शब्द का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर– निग्रह शब्द का अर्थ है "अलग करना"। जैसे किसी मानव के शरीर के किसी अंग में फोड़ा

आदि घाव हो गया हो अथवा किसी सर्प, बिच्छू आदि विषधर द्वारा डस लिया हो, तो सुधी पुरुष उसे ठीक करने का भरसक प्रयास करते हैं, कदाचित् उसके ठीक होने की उम्मीद नहीं हो तो उसके द्वारा पूरे शरीर को नष्ट होने से बचाते हैं और कुशल वैद्य उस अंग को काटकर अलग कर देता है, उसी प्रकार श्री आचार्य परमेष्ठी जी भी कुशल वैद्य की तरह उच्छंखल, दुष्ट, दुराशयी, अहंकारी, शिष्य को भी समझाने का प्रयास करते हैं, कहीं वह कल्याण मार्ग से भटक न जाये, किन्तु जब वे उस कार्य में असफल हो जाते हैं तब सम्पूर्ण संघ की रक्षा हेतु, धर्म की निंदा, अप्रभावना से बचने के लिए, उस धर्म द्रोही आत्म हित से विरहित, असत्यार्थी शिष्य को अलग कर देते हैं। (इस कार्य को भी वे अपनी कषाय के पोषण व अधिकार का दुरुपयोग, अन्य जन का तिरस्कार कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए नहीं अपितु संघ हित, आगम की अनुज्ञा का पालन, धर्म रक्षा, चतुर्विध संघ का कल्याण, स्व-पर के संयम की सुरक्षा व वृद्धि हेतु ही करते हैं) यह शिष्य को संघ से अलग करने का कार्य ही निग्रह करना कहलाता है।

प्रश्न २७. "आचार्य परमेष्ठी आत्मानुशासन करते हुए चतुर्विध संघ पर शासन करते हैं " इस कथन को स्पष्ट करने की कृपा करें।

उत्तर- अनुशासन दो शब्दों से मिलकर बना है-अनु + शासन। अनु का अर्थ है "पीछे" एवं शासन का अर्थ है "शासन करना" अर्थात् वे परमपूज्य श्री आचार्य परमेष्ठी जी पहले अपनी आत्मा पर शासन करते हैं अर्थात् वे जिनेन्द्र भगवान के शासन में आगम रूपी संविधान के अनुसार चलते हैं तथा वे अपने शिष्यों से भी आगम रूपी संविधान के अनुसार जिन आज्ञा का ही पालन कराते हैं, स्वैच्छाचारी प्रवृत्ति नहीं करते क्योंकि, वे पूज्य गुरुवर जानते हैं कि अनुशासन हीन दूसरों पर अनुशासन करने का अधिकारी नहीं होता और न ही अनुशासन हीन आचार्य की बातों का शिष्यों पर कोई प्रभाव पड़ पाता है। अनुशासनशील आचार्यों को पाकर शिष्य भी अपने समस्त अपराधों को निश्छलता के साथ उनके चरणों में निवेदन करते हैं एवं दोष मुक्त आचार्य भगवन ही शिष्यों को प्रायश्चित देकर उन्हें परिशुद्ध करते हैं, इसी में उनकी, गरिमा, महिमा एवं मर्यादा है।

प्रश्न २८. आपने अभी कहा था कि श्री आचार्य परमेष्ठी जी संघ संचालन का कार्य करते हैं ? यहाँ संघ संचालन का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर- संचालक का अर्थ होता है-समीचीन रूप से संचालन करने वाला। जैसे-चालक किसी वाहन को चलाता है, नाविक नाव को चलाता (खेता) है, घर का प्रमुख (मुखिया) अपने घर को संचालित करता है, प्रधानाध्यापक (प्राचार्य) अपने विद्यालय का, मुख्य मंत्री अपने राज्य का, प्रधानमंत्री अपने देश का संचालन करते हैं, उसी प्रकार प० पू० आचार्य परमेष्ठी जी अपने चतुर्विध (ऋषि, मुनि, यति, अनगार अथवा मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) संघ का

संचालन करते हैं। वाहन चालक की तरह मार्ग की समीचीनता, गति की समीचीनता, अपनी एवं वाहन की क्षमता को देखकर संचालन करते हैं, अर्थात् संसार, शरीर, भोगों से विरक्त, धर्म व धर्म के फलों में उत्सुक, आत्मकल्याणेच्छुक, धर्मात्मा जनों के प्रति वात्सल्य भावना से परिपूर्ण, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति श्रद्धा से समर्पित, जाति, कुल आदि से शुद्ध, आसन्न भव्य देखकर, शरीर आदि (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) की अनुकूलता देखकर दीक्षा देना, यथा योग्य शिक्षा देना, प्रायश्चित देकर शुद्ध करना, अपने आश्रित शिष्य जनों से भी निर्दोष (अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार रहित) संयम का पालन कराना, प० पू० श्री आचार्य परमेष्ठी जी का संघ संचालन कार्य कहलाता है।

प्रश्न २९. प० पू० श्री आचार्य परमेष्ठी जी अपने चतुर्विध संघ का संचालन या नेतृत्व किस प्रकार करते हैं ?

उत्तर- प० पू० श्री आचार्य परमेष्ठी जी अपने चतुर्विध संघ (निजाश्रित) का संचालन प्रमुख नायक (मुखिया) बनकर करते हैं, वे मुखिया का कार्य मुख की तरह से करते हैं, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ स्थान पर विराजित होते हुए सर्व संघ का ध्यान रखते हैं। जैसे मुख शरीर के किसी अंग या उपांग विशेष के साथ पक्षपात नहीं करता, सभी अंगउपांगों को समान रूप से भोजन पानी देता है, उसी प्रकार वे यथार्थ आचार्य परमेष्ठी जी भी निजाश्रित चतुर्विध संघ का कुशलता के साथ मातृवत् वात्सल्य से युक्त होकर आगमानुसार परिपालन करते हैं।

प्रश्न ३०. पूज्य श्री अभी आपने दीक्षा के सम्बन्ध में कथन करते समय कहा था कि देश, कुल, जाति से शुद्ध आसन्न भव्य ही जिन दिगम्बर दीक्षा का पात्र है ? देश, कुल, जाति से शुद्ध का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर- जिनत्व की दीक्षा लेना कोई आसान कार्य नहीं अपितु असिधारा पर चलने के समान है, दिगम्बर मुनि दीक्षा जैसी सर्वोत्कृष्ट वस्तु को पाने के सभी अधिकारी नहीं हो सकते, **जैसे-** सिंहनी का दूध स्वर्ण पात्र में ही ठहरता है, लोहादि निकृष्ट धातु के पात्र में नहीं । बादाम, पिस्ता, काजू आदि का हलवा, किशमिस, मुनक्का की सब्जी, मावा के लड्डू एवं अन्य मेवा व गरिष्ठ पकवानों का पाचन हर एक व्यक्ति नहीं कर सकता या राज्य का संचालन चिलाती, सुषेण, दुर्योधन, कंस, रावण, जैसे कायर व पुरुषार्थहीन, अन्यायी पुरुष नहीं कर सकते, उसी प्रकार दिगम्बर मुनि दीक्षा भी हर कोई नहीं ले सकता। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य ही दिगम्बर मुनि दीक्षा के पात्र हैं, जिन्होंने उत्तम देश, उत्तम जाति व कुल में जन्म लिया हो, म्लेच्छ या मांसाहारियों के क्षेत्र, जाति, कुल में जन्म नहीं लिया हो, तथा कुल में विजातीय विवाह, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि कोई भी कुल कलंकित कार्य नहीं किया हो, मिश्र जाति वाला न हो। आचार्य भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी आदि प्रायः सभी आचार्य भगवंतों की ऐसी ही आज्ञा है।

प्रश्न ३१. यदि कोई व्यक्ति उक्त योग्यताओं से रहित है और वह मुनि दीक्षा ग्रहण कर ले तो क्या हानि है ?

उत्तर– उक्त योग्यताओं से रहित व्यक्ति दिगम्बर मुनि (जिनत्व) की दीक्षा लेने का पात्र नहीं होता, हाँ वह अपनी योग्यता क्षमता के अनुसार, ब्रह्मचारी, क्षुल्लक व ऐलक जी की दीक्षा ग्रहण कर सकता है और आचार्य परमेष्ठी उसे श्रावकोत्कृष्ट दीक्षा प्रदान करते हैं। पूर्ववर्ती आचार्य भगवंतों व जिनेन्द्रों की आज्ञा का लोप करना भी सम्यक्त्व की विराधना कहलाती है, अतः आत्म कल्याणार्थी सम्यक्दृष्टि जिनाज्ञा का लोप नहीं करता।

लोहादि निकृष्ट धातु के पात्र में सिंहनी का दूध नहीं ठहरता, दुर्बल व्यक्ति को गरिष्ठ भोजन देना मृत्यु या रोग को निमंत्रण देना है, शक्ति से ज्यादा भार लादना दुखदायी होता है, नीच कुलोत्पन्न, वंश व जाति से भ्रष्ट राज पुत्र–राजा बनने पर राज्य को प्राप्त करते ही राज्योन्माद से पद भ्रष्ट हो जाता है, उसी प्रकार निंद्य देश, कुल, जाति में उत्पन्न, कुत्सित संस्कारों से युक्त, बुरी आदतों / व्यसनों में अत्यासक्त व्यक्ति जिनत्व की / मुनि दीक्षा लेने का पात्र नहीं होता। यदि अंगीकार कर भी ले तो आचार्य भगवन कहते हैं कि वह अपने संयम पालन में सफल नहीं हो पाता। अत: प० पू० श्री आचार्य भगवंत पात्रता अनुसार ही दीक्षा देते हैं तथा लेने वाला पात्र भी निश्छलता के साथ गुरु आज्ञा से दीक्षा ग्रहण करता है ।

प्रश्न ३२. क्या आचार्य परमेष्ठी के कोई भेद भी होते हैं ? यदि हाँ तो वे भेद कौन–कौन से हैं बताने की कृपा करें ?

उत्तर– प० पू० आचार्य परमेष्ठी जी के अन्य भेद भी संभावित है, जो प्रायः पढ़ने व सुनने में भी आते हैं। जैसे–१. आचार्य, २. युवाचार्य, ३. ऐलाचार्य, ४. बालाचार्य, ५. उच्चारणाचार्य, ६. छुल्लकाचार्य, ७. आचार्यकल्प, ८. गणधराचार्य.....इत्यादि।

प्रश्न ३३. कभी –कभी किन्हीं श्रावकों के नाम के साथ भी आचार्य व आचार्यकल्प शब्द का प्रयोग सुनने में आता है, उनमें और आपके द्वारा बताये जाने वाले आचार्य परमेष्ठी के स्वरूप में कोई भेद हैं क्या ? यदि हाँ तो क्या है ? बताने की कृपा करें ?

उत्तर– लोक व्यवहार में कहे जाने वाले आचार्य व प० पू० श्री आचार्य परमेष्ठी जी के स्वरूप में बहुत भेद हैं, यह पहले ही कह चुके हैं कि कोई भी परमेष्ठी वस्त्र सहित नहीं होते, समस्त (पाँचों ही) परमेष्ठी वस्त्रादि सर्व परिग्रह रहित दिगम्बर, विषय–कषाय, आरंभ व पापादि क्रियाओं से रहित ज्ञान, ध्यान तप में लीन रहने वाले होते हैं। लोक व्यवहार में कहे जाने वाले वे सुधी श्रावक / विद्वान हैं परमेष्ठी नहीं है, जैसे– साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, व्याकरणाचार्य, दर्शनाचार्य, सिद्धांताचार्य, प्रतिष्ठाचार्य, ग्रहस्थाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, आचार्य कल्प, इत्यादि, ये किसी विद्वानको उसकी योग्यतानुसार दी जाने वाली पदवी / उपाधि हैं। जैसे– दानवीर, धर्मवीर,

समाज रत्न, समाजभूषण, वाणी भूषण, मुनि भक्त, व्याख्याता, प्रवक्ता, अध्यापक, प्राध्यापक, प्रधान, प्रधानाचार्य, आचार्य जी, शास्त्री जी, सिद्धांत शास्त्री जी, डॉ०, एडवोकेट, बैरिस्टर, मजिस्ट्रेट, न्यायाधीश, कुलदीपक इत्यादि गृहस्थों की उपाधि या पदवियाँ हैं, किन्तु वे परमेष्ठी नहीं हैं। अत: परमेष्ठी की तरह पूज्यनीय व श्रद्धानीय नहीं हैं अपितु सामान्य श्रावकों की तरह सम्मानीय व आदरणीय हो सकते हैं।

प्रश्न ३४. श्री आचार्य परमेष्ठी जी के पर्यायवाची नाम क्या–क्या है ?

उत्तर– आचार्य परमेष्ठी के पर्याय–वाची नाम निम्नांकित हैं, जिनसे आचार्य पद का ही बोध होता है–आचार्य, सूरि, मुनि पुंगव, संतशिरोमणि, गणेश, गणधर, गणीन्द्र, यतीन्द्र, गणनायक, गणाधिप, गणपति, यतिनायक, मुनीन्द्र, योगीन्द्र, संघाधार, मुनि कुंजर।

प्रश्न ३५. श्री आचार्य परमेष्ठी जी के कितने मूलगुण होते हैं ? और कौन–कौन हैं ? बताने की कृपा करें ?

उत्तर– प० पू० आचार्य परमेष्ठी जी के छत्तीस (३६) मूल गुण होते हैं, वे निम्नलिखित हैं– १२ तप + १० धर्म + ५ पंचाचार + ६ आवश्यक + ३ गुप्ति = ३६ ।

प्रश्न ३६. तप किसे कहते हैं ? कितने भेद हैं एवं कौन–कौन से नाम बताओ?

उत्तर– इच्छाओं का निरोध करना तप कहलाता है, उसके मुख्य रूप से दो भेद हैं– (१) आभ्यंतर तप (२) बाह्य तप। इन दोनों तपों के भी छह–छह भेद हैं, जो पूर्व में कहे जा चुके हैं। ये १२ तप आचार्य श्री के मूलगुण हैं किन्तु साधु परमेष्ठी के उत्तर गुण होते हैं।

प्रश्न ३७. धर्म किसे कहते हैं ? एवं उसके दश भेद कौन–कौन से हैं, नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं अथवा जो संसारी प्राणियों को मोक्ष में धारण करे वह धर्म है । उस धर्म के दस भेद / लक्षण हैं, जो निम्नांकित हैं– (१) उत्तम क्षमा धर्म, (२) उत्तम मार्दव धर्म, (३) उत्तम आर्जव धर्म, (४) उत्तम शौच धर्म, (५) उत्तम सत्य धर्म, (६) उत्तम संयम धर्म, (७) उत्तम तप धर्म, (८) उत्तम त्याग धर्म, (९) उत्तम आकिंचन्य धर्म (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म।

प्रश्न ३८. उक्त दश धर्मों का स्वरूप क्या है ? संक्षेप में अर्थ समझाने की कृपा करें?

उत्तर– उपरोक्त धर्म के दस लक्षणों का संक्षेप स्वरूप निम्नलिखित हैं– .

(१) उत्तम क्षमा धर्म– दुष्ट जनों द्वारा कष्ट दिये जाने पर, प्रतिकूल कारण या क्रोध के हेतुओं के उपस्थित होने पर तथा प्रतिकार करने की सामर्थ्य होने पर भी उसके प्रति समतामय परिणाम या क्षमा भाव बनाये रखना उत्तम क्षमा धर्म है।

(२) **उत्तम मार्दव धर्म–** मान के कारणों का सद्भाव होने पर भी जाति आदि मदों का सर्वथा अभाव कर देना एवं नवनीत के समान कोमल / उत्कृष्ट नम्र / विनय युक्त परिणामों का होना ही श्रमण का उत्तम मार्दव धर्म है।

(३) **उत्तम आर्जव धर्म–** मन, वचन, काय की वक्रता का सर्वथा अभाव एवं उत्तम सरलता, सहजता का सद्भाव होना ही उत्तम आर्जव धर्म है।

(४) **उत्तम शौच धर्म–** प्रकर्ष लोभ का अभाव एवं आत्मा के परिणामों का अत्यंत निर्मल होना, अर्थात् आत्मा की परम निर्मलता ही उत्तम शौच धर्म है।

(५) **उत्तम सत्य धर्म–** सज्जन पुरुषों के साथ हित, मित, प्रिय, वचन बोलना, या सत्य वचन बोलना, मन, वचन काय के द्वारा सत्य का ही प्रतिपादन करना, अनुभव करना अथवा जीवन को सत्यार्थ मार्ग पर चलाने हेतु निज को पूर्ण रूप से समर्पित कर देना ही उत्तम सत्य धर्म है।

(६) **उत्तम संयम धर्म–** पाँच महाव्रत, पाँच समितियों का पालन करना, मन, वचन, कार्य की उद्दण्डता का त्याग, इन्द्रियों को जीतना, कषायों का निग्रह करना ही उत्तम संयम धर्म कहलाता अथवा पाँच स्थावर व त्रस इन षट्कायिक जीवों की नव कोटि से रक्षा करना एवं पाँच इन्द्रिय और मन इन छहों को जीतना उत्तम संयम धर्म है।

(७) **उत्तम तप धर्म–** इच्छाओं या इन्द्रियों का निग्रह, कर्म क्षय के लिये करना, जिससे आत्मा-परमात्मा के रूप में परिवर्तित हो सके वही उत्तम तप धर्म है।

(८) **उत्तम त्याग धर्म–** जो समस्त द्रव्यों के विषय में मोह का त्याग कर तीन प्रकार के निर्वेद की भावना करता है, उसके त्याग धर्म होता है।

(९) **उत्तम आकिंचन धर्म–** जो मुनि निसंग होकर सुख और दुःख देने वाले अपने भावों का निग्रह कर निर्द्वन्द रहता है, अर्थात् किसी इष्ट-अनिष्ट विकल्प में नहीं रहता उसके उत्तम आकिंचन्य धर्म होता है। जिसका पर में कुछ नहीं है, वह अकिंचन है और अकिंचन का भाव या कर्म ही उत्तम आकिंचन्य धर्म है।

(१०) **उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म–** पर देह / पदार्थों से आसक्ति का त्याग करके अपनी ब्रह्मस्वरूप आत्मा में चर्या करना ही ब्रह्मचर्य धर्म है। स्त्रियों के सर्वांगों को देखते हुए भी जो उनमें विकार भाव को प्राप्त नहीं होता, वह दुर्धर ब्रह्मचर्य भाव को धारण करने वाला उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म का पालक होता है।

प्रश्न ३९. आवश्यक कर्त्तव्य किसे कहते हैं ? वे कितने व कौन-कौन से हैं ?

उत्तर– अवश्य करने योग्य कार्य आवश्यक कहलाते हैं, वे आवश्यक कर्तव्य छह होते हैं– (१) समता (२) वन्दना (३) स्तुति (४) प्रतिक्रमण (५) प्रत्याख्यान (६) कायोत्सर्ग / (कृति कर्म)। (इन

षडावश्यक कर्तव्यों का कथन विस्तार से आगे किया गया है, वहाँ देखें।)

प्रश्न ४०. गुप्ति किसे कहते हैं ? कितने भेद हैं एवं कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– जिसके बल से संसार के कारणों से आत्मा की रक्षा (गोपन) होती है, वह गुप्ति है अथवा समीचीन प्रकार से योगों का निग्रह करना गुप्ति है। गुप्ति के तीन भेद होते हैं (१) मन गुप्ति (२) वचन गुप्ति (३) काय गुप्ति।

प्रश्न ४१. उपरोक्त तीनों गुप्तियों का स्वरूप क्या है ? क्या इनके अन्य भेद भी संभव हैं?

उत्तर– उपरोक्त तीनों गुप्तियों के व्यवहार और निश्चय के भेद से प्रत्येक के दो–दो भेद हैं, प्रथमतः व्यवहार गुप्ति का एवं अनन्तर साथ में ही निश्चय गुप्ति का कथन करते हैं।

(१) मनो गुप्ति– कलुषता, मोह, राग, द्वेष आदि अशुभ भावों के परिहार को व्यवहार नय से मनोगुप्ति कहा तथा रागद्वेष से मन का परावर्त होना निश्चय मनोगुप्ति कहलाती है।

(२) वचन गुप्ति– पाप के हेतुभूत ऐसे स्त्री कथा, राजकथा, चोर कथा, भक्त कथा इत्यादि वचनों का परिहार अथवा असत्यादिक की निवृत्ति वाले वचन व्यवहार वचन गुप्ति है। असत्य भाषणादि से निवृत्ति होना अथवा मौन का शाश्वत पालन करना निश्चय वचन गुप्ति है।

(३) काय गुप्ति– बंधन, छेदन, मारण, आकुंचन (संकोच) तथा प्रसारणा (फैलाना) इत्यादि काय क्रियाओं की निर्वृत्ति होना या शरीर से शुभ–चेष्टा करना व्यवहार काय गुप्ति है तथा औदारिकादि शरीर की जो क्रिया होती रहती है, उससे निर्वृत्त होना यह काय गुप्ति का लक्षण है अथवा हिंसादि सर्व पाप क्रियाओं की निर्वृत्ति होना निश्चय काय गुप्ति है।

प्रश्न ४२. वर्तमान काल में सबसे श्रेष्ठ परमेष्ठी कौन हैं ? जो आज हमारे सामने विद्यमान है ?

उत्तर– वर्तमान (पंचम) काल में आचार्य परमेष्ठी ही सर्व श्रेष्ठ पुरुष हैं क्योंकि, आज इस कलिकाल में अरिहंत परमेष्ठी व सिद्ध परमेष्ठी नहीं होते। अत: प० पू० श्री आचार्य परमेष्ठी जी मंगल, उत्तम, शरणभूत एवं इस काल के जिनेन्द्रवत् ही हैं। उनकी पूजा अर्चनादि करना भी आत्म कल्याण का हेतु है।

प्रश्न ४३. पूज्य श्री आपने अभी कहा था कि प० पू० श्री आचार्य परमेष्ठी जी शिष्यों को पाप मुक्त करने हेतु प्रायश्चित देते हैं ? यहाँ प्रायश्चित शब्द का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर– प्रति समय लगने वाले अंतरंग व बाह्य दोषों की निर्वृत्ति करके अन्तर्शोधन करने के लिए किया गया पश्चात्ताप या दण्ड के रूप में दिया गया कायोत्सर्ग, रस त्याग या उपवासादि प्रायश्चित कहलाता है। अपने अपराध का बोध हो जाने पर चित्त की शुद्धि के लिए गुरु द्वारा दिया गया दण्ड प्रायश्चित कहलाता है।

प्रश्न ४४. प्रायश्चित के कितने भेद होते हैं ? एवं कौन–कौन हैं ? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– प्रायश्चित के दस भेद होते हैं जो निम्नांकित हैं –

(१) आलोचना– गुरु के समक्ष, दस प्रकार के दोषों को टाल कर, अपने द्वारा प्रमाद वश, अज्ञानता वश या कषाय वश हुए अपराधों को गुरु के सामने निश्छलता से प्रकट करना आलोचना कहलाती है।

(२) प्रतिक्रमण– "तस्स मिच्छा मे दुक्कडं" अर्थात् अपने अपराध को मिथ्या करने के लिए गुरु के सामने भाव सहित यह पाठ पढ़ना प्रतिक्रमण है। इसके सात भेद हैं।

(३) तदुभय– गुरू की साक्षी में शिष्य द्वारा स्वयं से की गई गलती की आलोचना करना एवं प्रतिक्रमण करना तदुभय / उभय नामक प्रायश्चित है।

(४) विवेक– अपने संयम का निर्दोष पालन करने के लिए अनिष्टकारक, प्रकृत्ति विरुद्ध अनुपसेव्य, अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करना व विवेक पूर्वक संयम का पालन करना विवेक नाम का प्रायश्चित है।

(५) व्युत्सर्ग– नियत काल के लिए शरीर, वचन व मन का त्याग करना अर्थात् इनसे ममत्व का त्याग करना व्युत्सर्ग नामक प्रायश्चित है।

(६) तप– उपवासादि छह प्रकार का बाह्य तप, तप नामक प्रायश्चित है।

(७) छेद– दिन, मास, पक्ष, वर्ष आदि दीक्षा काल में से कम कर देना छेद प्रायश्चित है।

(८) परिहार– दिन, पक्ष, मास, वर्ष आदि नियत काल के लिए उस शिष्य को संघ से या गण से निकाल देना परिहार नामका प्रायश्चित है।

(९) उपस्थापना– महाव्रतों का मूलोच्छेद करके पुनः दीक्षा देना उपस्थापना नाम का प्रायश्चित है। –

(१०) श्रद्धान– मानसिक दोष के होने पर या सम्यक्त्व से च्युत होने पर, उस दोष का परिमार्जन करने के लिए **"मेरा दोष मिथ्या हो"** ऐसा अभिव्यक्त करने को श्रद्धान प्रायश्चित कहा है।

नोट :– मूलाचार में उपस्थापना प्रायश्चित के स्थान पर मूल शब्द का प्रयोग किया है, एवं श्रद्धान नाम का प्रायश्चित का दशवाँ भेद भी माना है।

प्रश्न ४६. आलोचना प्रायश्चित के दस दोष कौन–कौन से हैं ? बताने की कृपा करें ?

उत्तर– (१) आकम्पित (२) अनुमानित (३) दृष्ट (४) बादर (५) सूक्ष्म (६) छन्न (७) शब्दाकुलित (८) बहुजन (९) अव्यक्त (१०) तत्सेवी। ये आलोचना के दस दोष हैं, इन दोषों को टाल कर ही प्रायश्चित हेतु गुरु के सामने आलोचना करनी चाहिए।

प्रश्न ४७. प्रतिक्रमण के सात भेद कौन–कौन से हैं ? नाम बताने की कृपा करें ?

उत्तर– १) दैवसिक (२) रात्रिक (३) पाक्षिक (४) चातुर्मासिक (५) वार्षिक (६) ईर्यापथ (७) औत्तमार्थिक ये सात (काल सीमा की अपेक्षा से) प्रतिक्रमण के भेद कहे हैं।

प्रश्न ४८. प० पू० आचार्य परमेष्ठी के ३६ मूल गुण अन्य प्रकार भी सुने जाते हैं वे ३६ मूलगुण कौन–कौन से हैं ? बताने की कृपा करें।

उत्तर– आचारत्व, आधारत्वादि आठ गुण + छह बाह्यतप + छह अंतरंग तप + आचेलक्य आदि दस स्थिति कल्प + सामायिकादि छह आवश्यक = ३६ मूलगुण। इनमें से बारह तपों, दस स्थिति कल्पों एवं सामायिकादि षडावश्यकों का कथन किया जा चुका है। आचारत्वादि आठ गुण आगे कहते हैं।

प्रश्न ४९. आचारत्व व आधारत्वादि आठ गुण कौन–कौन से हैं ? जो प्रत्येक आचार्य परमेष्ठी जी में अनिवार्य रूप से होते हैं ?

उत्तर– (१) आचारत्व (२) आधारत्व (३) व्यवहार कुशल (४) उत्पीड़क (५) आयोपायदर्शी (६) अपरिस्रावी (७) प्रसिद्धकीर्ति (८) निर्यापकत्व। ये आठ गुण पूज्य आचार्य परमेष्ठियों में नियम से होने चाहिए।

प्रश्न ५०. क्या प० पू० आचार्य परमेष्ठियों के ३६ विशिष्ट गुण अन्य प्रकार भी संभावित हैं, यदि हाँ तो वे कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– भरत क्षेत्र में आज इस पंचमकाल में आचार्य परमेष्ठी ही विश्व के श्रेष्ठतम महापुरुष हैं, उन आचार्य परमेष्ठियों के अष्टपाहुड़ की टीका में ३६ विशिष्टगुण इस प्रकार भी प्राप्त होते हैं

(१) आचारवान (२) श्रुताधार (३) प्रायश्चित्त (४) आसनादिदः (५) आयापाय कथी (६) दोषभाषक (७) अश्रावक (८) संतोषकारी (९) निर्यापक (१०) अनुदिष्टभोजी (११) शय्यासन (१२) आरोगभुक् (१३) क्रियायुक्त (१४) व्रतवान (१५) ज्येष्ठ सद्गुण (१६) प्रतिक्रमी (१७) षण्मासयोगी (१८) दो निषद्यक + (१२ तप) (१९) अनशन (२०) ऊनोदर (२१) वृत्तिपरिसंख्यान (२२) रस परित्याग (२३) विविक्त शय्यासन (२४) कायक्लेश (२५) प्रायश्चित्त (२६) विनय (२७) वैयावृत्ति (२८) स्वाध्याय (२९) व्युत्सर्ग (३०) ध्यान + (छह आवश्यक) (३१) सामायिक (३२) वंदना (३३) स्तुति (३४) प्रत्याख्यान (३५) प्रतिक्रमण (३६) कायोत्सर्ग। ये ३६ (छत्तीस) गुण आचार्य परमेष्ठियों के विशिष्ट गुण हैं।

******

अध्याय–५

उपाध्याय परमेष्ठी

प्रश्न १. उपाध्याय परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो मुनि रत्नत्रय से संयुक्त होते हुए स्वयं अध्ययन में रत रहते हैं एवं अन्य साधुओं को अध्ययन – अध्यापन कराते हैं, सदैव धर्मोपदेश देने में संलग्न रहते हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी कहलाते हैं।

प्रश्न २. उपाध्याय परमेष्ठी के कितने मूलगुण होते हैं ?

उत्तर– ग्यारह अंग व चौदह पूर्व के ज्ञाता, अध्ययन कर्ता, अध्यापन कर्ता होने से उपाध्याय परमेष्ठी के पच्चीस (२५) मूल गुण कहे हैं, यद्यपि ये पच्चीस उनके विशेष गुण हैं, मुनियों के समान २८ मूल गुण एवं चौंतीस उत्तर गुणों का पालन करते हैं, संग्रह–निग्रहादि गुणों को छोड़कर आचार्य के समस्त गुणों से युक्त होते हैं।

प्रश्न ३. उपाध्याय परमेष्ठी के अन्य विशिष्ट नाम कौन–कौन हैं ?

उत्तर– बहुश्रुतवंत, आगम वेत्ता, श्रुत पारग, उवज्झाय, अध्यापक मुनि, शिक्षक मुनि, विद्या गुरु, समाधान कर्ता, विद्यावाग्मी, शास्त्र मर्मज्ञ, श्रुत प्रवक्ता, श्रुत रहस्योद्घाटक, वाग्ब्रह्म, श्रुत सर्वज्ञ, श्रुत केवली, श्रुतवार्तिक ।

प्रश्न ४. अंग किसे कहते हैं ?

उत्तर– अंग का अर्थ है– अंश, भाग, हिस्सा, अवयव, विभाग, खण्ड, शक्ल इत्यादि। जिनवाणी मुख्य रूप से बारह अंगों में विभाजित हैं, इसलिए द्वादशांग मय कही जाती है अथवा जो तीनों कालों को समस्त द्रव्य व पर्यायों को अंगित (व्याप्त) करता है, वह अंग है।

प्रश्न ५. श्रुत ज्ञान के मुख्य रूप से कितने भेद हैं ?

उत्तर– श्रुत ज्ञान के मुख्य रूप से दो भेद हैं– (१) अंग प्रवृष्टि (२) अंग बाह्य।

प्रश्न ६. अंग प्रविष्टि किसे कहते हैं ? एवं उसके बारह भेद कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– आचारांग आदि बारह प्रकार का ज्ञान अंग प्रविष्टि कहलाता है । उसके बारह भेद निम्न प्रकार हैं –

आचारं सूत्र कृतं, स्थानं समवाय नामधेयं च ।

व्याख्या प्रज्ञप्तिं च ज्ञातृ कथोपासकाध्ययने ।। ७ ।। श्रु.भ.

वन्देऽन्त कृद्दश मनुत्तरोपपादिक दशं दशावस्थम् ।

प्रश्न व्याकरणं हि, विपाक सूत्रं च विनमामि ।। ८ ।। श्रु. भ.

(१) आचाराङ्ग (२) सूत्रकृतांङ्ग (३) स्थानाङ्ग (४) समवायाङ्ग (५) व्याख्या प्रज्ञप्त्यङ्ग (६) ज्ञातृ-धर्म कथाङ्ग (७) उपासकाध्ययनाङ्ग (८) अन्तः कृद्दशाङ्ग (९) अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग (१०) प्रश्नव्याकरणाङ्ग (११) विपाक सूत्राङ्ग (१२) दृष्टिवादाङ्ग।

प्रश्न ७. द्वादशांङ्ग (अंक प्रविष्ट) में कुल कितने पद हैं एवं एक पद में कितने अक्षर होते हैं ?

उत्तर- द्वादशाङ्ग (अंग प्रविष्ट) में कुल १, १२, ८३, ५८,००५ (एक सौ बारह करोड तिरासी लाख अट्ठावन हजार पाँच) पद हैं एवं एक पद (मध्यम पद) में १६,३४,८३,०७,८८८ (सोलह अरब, चौंतीस करोड़, तिरासी लाख, सात हजार, आठ सौ अठासी) अक्षरों का प्रमाण है।

प्रश्न ८. पद किसे कहते हैं ? मुख्य कितने भेद हैं ? कौन-कौन से हैं ? संक्षेप में बताने की कृपा करें।

उत्तर- जिसके द्वारा जाना जाता है या जिसका जिसमें अवस्थान है, ऐसे अर्थालाप बोधक वाक्य को पद कहते हैं, इसके मुख्य तीन भेद हैं- (१) अर्थ पद (२) मध्यम पद (३) प्रमाण पद । कुछ आचार्यों ने चौथा पद " व्यवस्था पद " भी माना है।

(१) **अर्थ पद-** एक अक्षर से सात अक्षर तक का अर्थ पद होता है अथवा जितने पदों द्वारा अर्थ का ज्ञान होता है वह अर्थ पद है, जैसे-" पानी लाओ " इसमें दो पद हुए, " शुद्ध भोजन बनाओ " इसमें तीन पद हुए, इत्यादि, इस पद में अक्षरों की संख्या अनियत (अनवस्थित) रहती है।

(२) **मध्यम पद-**१६,३४,८३,०७,८८८ अक्षरों का मध्यम पद होता है, अंग तथा पूर्वो के पद की संख्या इसी मध्यम पद से गिनी जाती है। यह संख्या नियत (अवस्थित) है अर्थात् इससे कभी कम या अधिक अक्षर नहीं होते।

(३) **प्रमाण पद-** आठ अक्षर से निष्पन्न हुआ पद प्रमाण पद है, इस पद में भी अक्षरों की संख्या नियत है, इससे कम अधिक नहीं होती।

(४) **व्यवस्थापद-** जितने वाक्यों के समूह से एक अधिकार समाप्त होता है, उसे व्यवस्था पद कहते हैं, इसमें भी अक्षरों की संख्या अनियत ही होती है।

प्रश्न ९. आचारांग किसे कहते हैं एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– द्वादशांग के जिस (प्रथम) अंग या खण्ड में मुनियों के आचार का पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तियों का कथन है वह आचाराङ्ग है, इसमें अट्ठारह हजार (१८,०००) पद हैं।

प्रश्न १०. सूत्र कृताङ्ग में किसका वर्णन है एवं कितने पद हैं ?

उत्तर– ज्ञान की विनय, अध्ययन हेतु, व्यवहार धर्म एवं स्व समय–पर समय का वर्णन है, इसमें छत्तीस हजार (३६,०००) पद हैं।

प्रश्न ११. स्थानाङ्ग नामक तृतीय अंग में किसका वर्णन है एवं कितने पद हैं ?

उत्तर– इस अंग में द्रव्यों के भेद स्थानों का (एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, असंख्यात भेदों तक) वर्णन है, जैसे– "जीव" **एक भेद** हुआ, **दो भेद**– संसारी व मुक्त, **तीन भेद**–मुक्त, नो संसारी, संसारी, **चार भेद**–मुक्त, स्थावर, असंज्ञी, संज्ञी, **पाँच भेद**–एक इन्द्रिय..... पाँच इन्द्रिय–इत्यादि । इस अंग में ब्यालीस हजार (४२,०००) पद हैं।

प्रश्न १२. समवायाङ्ग में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– सब पदार्थों की समानता रूप से समवाय का विचार किया है अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, संख्या, नाम, प्रदेश, स्वभाव, गुण आदि अपेक्षा पाई जाने वाली समानता (समवाद) का कथन इस अंग में किया गया है। इस अंग में पदों की संख्या एक लाख चौसठ हजार (१,६४,०००) है।

प्रश्न १३. व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्ग में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– "जीव है या नहीं, नित्य है या अनित्य, शुद्ध है या अशुद्ध" इत्यादि साठ हजार प्रश्नों के उत्तर इस अंग में हैं। इस (व्याख्या प्रज्ञप्त्यङ्ग) अंग में पदों की संख्या दो लाख अट्ठाईस हजार (२,२८,०००) है।

प्रश्न १४. ज्ञातृ कथाङ्ग में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– ज्ञातृ कथाङ्ग में तीर्थंकरों, गणधरों, महापुरुषों की कथाओं का, दिव्य ध्वनि के काल आदि का, अन्य धर्म कथाओं का वर्णन है। इस अंग में पदों की संख्या पाँच लाख छप्पन हजार (५,५६,०००) है।

प्रश्न १५. उपासकाध्ययनाङ्ग में क्या वर्णन किया गया है एवं इसमें पद संख्या कितनी है?

उत्तर– उपासकाध्ययनाङ्ग में श्रावकों के कर्त्तव्य, व्रत, क्रियायें, प्रतिमाएँ, विधि, अतिचार, अनाचार, भावनाऐं, मूलगुण व उत्तर गुणों का सविस्तार कथन है । इस अंग में पदों की संख्या ग्यारह लाख सत्तर हजार (११,७०,०००) है।

प्रश्न १६. अन्तः कृद्दशाङ्ग में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- प्रत्येक तीर्थंकर के काल में दस-दस मुनिराज ऐसे होते हैं, जो घोर उपसर्ग को सहन करके अन्तर्मुहूर्त में घातिया कर्मों व अघातिया कर्मों को भी क्षय करके मुक्ति को प्राप्त हुए, उन अन्तःकृत् केवलियों का इसमें कथन है । महावीर स्वामी के काल में नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्किंवल, पालम्ब, अष्टपुत्र ये दस अन्तःकृतकेवली हुए। इस अंग में तेईस लाख अट्ठाईस हजार (२३,२८,०००) पद हैं।

प्रश्न १७. अनुत्तरोपपादिक दशाङ्ग में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- प्रत्येक तीर्थंकर के काल में दारूण उपसर्गों को सहन कर विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित व सर्वार्थसिद्धि विमान को प्राप्त करने वाले, दस-दस मुनियों के जीवन चरित्र का इसमें कथन है। जैसे-महावीर स्वामी के काल में ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, आनन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण, चिलात पुत्र ये दस मुनिराज घोर (दारुण) उपसर्ग सहन कर पंचानुत्तरों में गये। इस अंग में पदों की संख्या वानवे लाख चौवालीस हजार(९२,४४,०००) है।

प्रश्न १८. प्रश्न व्याकरणाङ्ग में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- प्रश्न व्याकरणाङ्ग में युक्ति, हेतु, नय सापेक्ष, निक्षेपादि के द्वारा आक्षेप-निक्षेप रूप प्रश्नों का तर्क पूर्ण उत्तर दिया गया है, तीन काल सम्बन्धी, धन-धान्यादि के लाभ-हानि सम्बन्धी, सुख-दुःख, जीवन-मरण, यश-अपयश, जय-पराजय, आदि का वर्णन किया गया है। इस अंग में पदों की संख्या जिनेन्द्र देव ने तिरानवे लाख सोलह हजार (९३,१६,०००) कही है।

प्रश्न १९. विपाक सूत्राङ्ग में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- विपाक सूत्राङ्ग में द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावानुसार शुभ-अशुभ आस्रव या पुण्य-पाप कर्मों के उदय, उदीरणा, फलदान का कथन है। इस अंग में पदों की संख्या एक करोड़, चौरासीलाख (१,८४,००,०००) है।

प्रश्न २०. दृष्टिवाद अंग में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- दृष्टिवादाङ्ग में ३६३ मिथ्यामतों (क्रियावादी के १८०, अक्रियावादी के ८४, अज्ञानवादी ६७ एवं वैनयिक के ३२ मतों) का निराकरण किया गया है । इस अंग के पाँच भेद (१. परिकर्म, २. सूत्र, ३. प्रथमानुयोग ४. पूर्वगत ५. चूलिका) हैं। इस अंग में पदों की संख्या-एक अरब आठ करोड़, अड़सठ लाख, छप्पन हजार पाँच है। (१०८,६८,५६,००५) है।

प्रश्न २१. परिकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिसमें गणित की व्याख्या कर उसका पूर्ण ज्ञान, विवेचन किया गया हो अर्थात् परि समन्तात्

चारों ओर से जिनमें विशद विवेचन है वह परिकर्म है। इस परिकर्म – में पदों की संख्या एक करोड़, उन्यासी लाख, पाँच हजार (१,७९,०५,०००) है।

प्रश्न २२. परिकर्म के कितने भेद है एवं कौन–कौन से, नाम बतायें ?

उत्तर– परिकर्म के पाँच भेद हैं– (१) चन्द्र प्रज्ञप्ति (२) सूर्य प्रज्ञप्ति (३) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (४) द्वीप सागर प्रज्ञप्ति (५) व्याख्या प्रज्ञप्ति।

प्रश्न २३. चन्द्र प्रज्ञप्ति में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– चन्द्र प्रज्ञप्ति में चन्द्रमा (देव) की आयु, परिवार, ऋद्धि, गति, चन्द्र बिम्ब की लम्बाई, चौड़ाई, विस्तार, परिधि एवं विमान की तथा उस देव की समस्त विशेषताओं का वर्णन है। इसमें पदों की संख्या छत्तीस लाख पाँच हजार (३६,०५,०००) है ।

प्रश्न २४. सूर्य प्रज्ञप्ति में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– सूर्य प्रज्ञप्ति में सूर्य देव की आयु, परिवार, ऋद्धि, गति, भोग–उपभोग, सूर्य के विमान की ऊँचाई, विस्तार, परिधि एवं वहाँ की समस्त विशेषताओं का वर्णन है, इसमें पदों की संख्या तीन लाख, तीन हजार (३,०३,०००) है।

प्रश्न २५. जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में भोग भूमि, कर्म भूमि व इनमें रहने वाले मनुष्य, तिर्यचों का, जम्बूद्वीप का विस्तार, परिधि, व्यास, नदी, पर्वत, कूट, कुलाचल, सरोवर, कमल, निवास करने वाले व्यंतरादि देव व देवियों का, सप्त क्षेत्रों की विशेषताओं का कथन इसमें किया गया है तथा नदी, पर्वत, कुलाचलों, सरोवरों, कूटों, कमलों आदि का विस्तार व उनकी अन्य विशेषताओं का भी कथन है। इसमें पदों की संख्या तीन लाख, पच्चीस हजार (३,२५,०००) है।

प्रश्न २६. द्वीप सागर प्रज्ञप्ति में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– द्वीप सागर प्रज्ञप्ति में, मध्य लोक में विद्यमान असंख्यात द्वीपों, समुद्रों का विस्तार, रचना व वहाँ रहने वाले पदार्थों, तिर्यंचों व मनुष्यों का या उनकी विशेषताओं का वर्णन किया गया है, द्वीप सागर प्रज्ञप्ति में बावन लाख, छत्तीस हजार (५२,३६,०००) पद हैं।

प्रश्न २७. व्याख्या प्रज्ञप्ति में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– व्याख्या प्रज्ञप्ति में पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, भव्य व अभव्य जीवों का उनके स्वभाव, गुण, धर्म का वर्णन किया गया है, इसमें पदों की संख्या चौरासी लाख, छत्तीस हजार (८४,३६,०००) है।

प्रश्न २८. सूत्र नामक दृष्टिवाद के भेद में किसका वर्णन है एवं इसमें पदों की संख्या कितनी है ?

उत्तर– सूत्र नामका अर्थाधिकार जीव के कर्ता, भोक्ता, बन्धक, निर्लेप इत्यादि रूप से पूर्व पक्षों– अकर्ता, अभोक्ता, अबन्धक, अवलेपक इत्यादि का निराकरण करता है अथवा तीन सौ तिरेसठ मिथ्यामतों का पूर्व पक्ष में वर्णन करता है। इस अंग में न्याय की प्रमुखता है । सूत्र नामक दृष्टिवाद अंग के भेद में अट्ठासी लाख पद (८८,००,००० पद) हैं।

प्रश्न २९. प्रथमानुयोग दृष्टिवादाङ्ग किसे कहते हैं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि तिरेसठ शलाका पुरुषों का जीवन चरित्र वर्णित है, वह प्रथमानुयोग है, इसमें पदों की संख्या पाँच हजार (५,०००) है।

प्रश्न ३०. पूर्वगत दृष्टिवादाङ्ग किसे कहते हैं एवं इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर– जिसमें उत्पाद आदि १४ विषयों का क्रमबद्ध, व्यवस्थित वर्णन है, वह पूर्वगत (पूर्व में जाना हुआ) दृष्टिवादाङ्ग है, इसके चौदह भेद हैं।

प्रश्न ३१. पूर्वगत दृष्टिवादाङ्ग के चौदह भेद कौन–कौन से हैं ?

उत्तर–

पूर्वगतं तु चतुर्दश, धोदित–मुत्पाद पूर्व माद्यमहम् ।
अग्रायणीय मीडे, पुरु–वीर्यानुप्रवादं च ।।१०।। श्रु. भ.
संततमहमभिवंदे, तथास्ति नास्ति प्रवाद पूर्वं च ।
ज्ञान प्रवाद – सत्यप्रवाद–मात्म प्रवादं च ।।११।। श्रु. भ.
कर्म प्रवाद मीडेऽथ, प्रत्याख्यान–नामधेयं च ।
दशमं विद्याधारं, पृथु विद्यानुप्रवादं च ।।१२।। श्रु. भ.
कल्याण नाम धेयं, प्राणावायं क्रिया विशालं च ।
अथ लोक बिन्दु सारं, बन्दे लोकाग्र सार पदम् ।।१३।। श्रु. भ...

(१) उत्पाद पूर्व (२) अग्रायणीय पूर्व (३) वीर्यानुप्रवाद पूर्व (४) अस्ति–नास्ति प्रवाद पूर्व (५) ज्ञान प्रवाद पूर्व (६) सत्य प्रवाद पूर्व (७) आत्म प्रवाद पूर्व (८) कर्म प्रवाद पूर्व (९) प्रत्याख्यान पूर्व (१०) विद्यानुवाद पूर्व (११) कल्याणवाद पूर्व (१२) प्राणानुवाद पूर्व (१३) क्रिया विशाल पूर्व (१४) लोक बिन्दु सार पूर्व, ये चौदह पूर्व हैं।

प्रश्न ३२. उत्पाद पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– उत्पाद पूर्व में जीवादि समस्त द्रव्यों के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का वर्णन है एवं उनके संयोगी धर्मों का

वर्णन है । इसमें पद संख्या एक करोड़ (१,००,००,०००) है।

प्रश्न ३३. अग्रायणीय पूर्व में किसका वर्णन है एवं कितने पद हैं ?

उत्तर– अग्रायणीय पूर्व में पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्व, सात सौ सुनय, सात सौ दुर्नयों का वर्णन है। इसमें छयानवे लाख (९६,००,०००) पद हैं।

प्रश्न ३४. वीर्यानुवाद (वीर्यानुप्रवाद) पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद है ?

उत्तर– छद्मस्थ व केवली की शक्ति, सुरेन्द्र व असुरेन्द्रों की ऋद्धियाँ, नरेन्द्र, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण आदि की सामर्थ्य, द्रव्यों के लक्षणों का निरूपण इसमें है, अथवा आत्मादि षड्द्रव्यों की, नव पदार्थों की, तपस्या की शक्ति का वर्णन इस पूर्व में किया गया है। वीर्यानुप्रवाद पूर्व में सत्तर लाख (७०,००,०००) पद हैं।

प्रश्न ३५. अस्ति–नास्ति प्रवाद पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– अस्ति–नास्ति प्रवाद पूर्व में षड् द्रव्यों का, नयों का, अस्ति–नास्ति आदि अनेकों पर्यायों द्वारा विवेचन किया गया है। इस पूर्व में पदों की संख्या साठ लाख (६०,००,०००) है।

प्रश्न ३६. ज्ञान प्रवाद पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– ज्ञान प्रवाद पूर्व में पाँच सम्यक्ज्ञान तीन मिथ्याज्ञानों का स्वरूप, लक्षण, भेद, प्रभेद, विषय एवं फल का वर्णन है । इस पूर्व में पदों की संख्या– निन्यानवे लाख, निन्यानवे हजार, नौ सौ निन्यानवे (९९,९९,९९९) है।

प्रश्न ३७. सत्य प्रवाद पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– सत्य प्रवाद पूर्व में वचन गुप्ति, वचनों के संस्कार, शब्दोच्चार के कण्ठ, तालु, मूर्धा आदि आठ स्थान, बारह प्रकार की भाषा, दस प्रकार का सत्य, वक्ता के भेद, प्रकार, दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों के शुभ–अशुभ वचनों के प्रयोगों का वर्णन है । इस पूर्व में छह करोड़ (६,००,००,०००) पद हैं।

प्रश्न ३८. आत्म प्रवाद पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– आत्म प्रवाद पूर्व में आत्म द्रव्य का, छह जीव निकायों का, अस्ति–नास्ति आदि विविध भंगों से निरूपण किया है एवं इस पूर्व में जीव के ज्ञान, सुख, गुण, स्वभाव व कर्त्तव्य आदि का भी वर्णन है। इस पूर्व में पदों की संख्या छब्बीस करोड़ (२६,००,००,०००) है।

प्रश्न ३९. कर्म प्रवाद पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– कर्म प्रवाद पूर्व में कर्मों का बन्ध, उदय, सत्व, व्युच्छित्ति, उपशम, क्षयोपशम, उदीरणा, निर्जरा, उत्कर्षण, अपकर्षण, निधत्ति, निकाचित, विसंयोजना, उद्वेलना एवं संक्रमण आदि

अवस्थाओं का तथा कर्मों की स्थिति, अनुभाग, प्रदेश व प्रकृति का, मूल व उत्तर प्रकृति रूप भेदों का भी वर्णन है, इस पूर्व में एक करोड़, अस्सी लाख पद (१,८०,००,०००) हैं।

प्रश्न ४०. प्रत्याख्यान पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- प्रत्याख्यान पूर्व में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, संहनन शक्ति के अनुसार व्रत-नियम, प्रतिक्रमण, तप-त्याग, आराधना-भक्ति, समिति, गुप्ति व मुनित्व की साधना में त्याग करने योग्य पदार्थों के प्रत्याख्यान का वर्णन है। प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व में पदों की संख्या चौरासी लाख (८४,००,०००) है।

प्रश्न ४१. विद्यानुवाद पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- विद्यानुवाद पूर्व में अंगुष्ठ प्रसेनादि सात सौ लघु विद्याओं, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्र श्रंखलादि पाँच सौ महाविद्याओं का, अंग, भौम, स्वर, व्यञ्जनादि आठ महानिमित्तों का, विद्या साधन की विधि, फल, तंत्र, मंत्र, यंत्रों की सामर्थ्य का, रज्जु राशिविधि, क्षेत्र, श्रेणी, लोक प्रतिष्ठा, समुद्घात आदि का वर्णन है। इस पूर्व में पदों की संख्या एक करोड़ दस लाख (१,१०,००,०००) है।

प्रश्न ४२. कल्याणवाद पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- कल्याणवाद पूर्व में सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारागणों के चार क्षेत्र, उपपादस्थान, गति, वक्रगति तथा उनके फलों का, पक्षी के शब्दों का और तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदि के गर्भावतार आदि महोत्सवों का वर्णन है। इस पूर्व में छब्बीस करोड़ (२६,००,००,०००) पद हैं।

प्रश्न ४३. प्राणानुवाद पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- प्राणानुवाद पूर्व में शरीर चिकित्सादि अष्टांग आयुर्वेद, भूति कर्म, जांगुलिक क्रम (विष विद्या), प्राणायाम और औषधियों के गुण-दोषों का वर्णन है। इस पूर्व में पदों की संख्या तेरह करोड़ (१३,००,००,०००) है।

प्रश्न ४४. क्रिया विशाल पूर्व में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- क्रिया विशाल पूर्व में लेखन कलादि पुरुष की बहत्तर कलाओं का, स्त्री सम्बन्धी चौसठ गुणों का, संगीत कला, शिल्प कला, काव्य-छन्दादि के गुण दोषों का, गर्भाधान आदि क्रियाओं का वर्णन है। इस पूर्व में नौ करोड़ (९,००,००,०००) पद हैं।

प्रश्न ४५. लोक बिन्दु सार में किसका वर्णन है एवं इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर- लोक बिन्दु सार में आठ व्यवहार, चार बीज, राशि परिकर्म आदि गणित, श्रुत सम्पत्ति

एवं मोक्ष के उपाय, साधन, स्वरूपादि का वर्णन है। इस पूर्व में बारह करोड़ पचास लाख (१२,५०,००,०००) पद हैं।

प्रश्न ४६. चूलिका किसे कहते हैं ? कितने भेद हैं, कौन–कौन से नाम है एवं इसमें कितने पद हैं, बताने की कृपा करें?

उत्तर– जिसमें तत्वों का सारांश रूप में कथन हो वह चूलिका है, इसके पाँच भेद हैं – (१) जल गता (२) स्थल गता (३) माया गता (४) रूप गता (५) आकाश गता। चूलिका में पदों की संख्या–दस करोड़, अड़तालीस लाख छयानवे हजार पच्चीस (१०,४८,९६,०२५) है।

प्रश्न ४७. चूलिका के पाँचों भेदों के विषय सम्बन्धी संक्षेप में व्याख्या करें?

उत्तर–

(१) **जल गता चूलिका–** जल में गमन, जल स्तम्भन के कारणभूत मंत्र, तंत्र और तपस्या रूप अतिशय का वर्णन है। इसमें पद संख्या दो करोड़, नौ लाख, उन्यासी हजार दो सो पाँच (२,०९,७९,२०५) है, प्रत्येक चूलिका में पदों की संख्या (२,०९,७९,२०५) दो करोड़, नौ लाख, उन्यासी हजार दो सौ पाँच ही है।

(२) **स्थल गता चूलिका–** पृथ्वी के भीतर गमन करने के कारणभूत मंत्र–तंत्र, और तपश्चरण रूप आश्चर्य आदि का, वास्तु विद्या, पृथ्वी गमन, भूमि सम्बन्धी परीक्षण व मेरू पर्वत आदि का वर्णन इस चूलिका में किया गया हैं।

(३) **माया गता चूलिका–** इन्द्र जाल आदि के कारणभूत मंत्र, तंत्र व तपश्चरण के अतिशय का वर्णन इस माया गता चूलिका में है।

(४) **रूप गता चूलिका–** सिंह, घोड़ा, हरिण, बैल, हाथी और मेघादि के रूप को, आकार को परिणमन करने भूत मंत्र–तंत्र, तपश्चरण तथा चित्र, काष्ठ लेप्य–लेखन कर्म आदि के लक्षण का कथन करती है।

(५) **आकाश गता चूलिका–** आकाश में गमन करने के कारणभूत मंत्र–तंत्र और तपश्चरण का कथन करती है।

प्रश्न ४८. अंग बाह्य किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ? उन भेदों के संक्षेप में व्याख्या सहित नाम बतायें ?

उत्तर– द्वादशाङ्ग के अतिरिक्त श्रुत ज्ञान की अंग बाह्य संज्ञा है, इसके कालिक व उत्कालिक आदि अनेक या चौदह भेद हैं, जो निम्नांकित हैं –

(१) **सामायिक–** समता भाव के विधान का वर्णन करता है।

(२) **चतुर्विंशति स्तवन–** चौबीस तीर्थंकरों की वंदना करने की विधि, उनके नाम, संस्थान, उत्सेध, पाँच कल्याणक, चौंतीस अतिशयों के स्वरूप और तीर्थंकरों की वंदना की सफलता का वर्णन करता है।

(३) **वन्दना–** एक जिनेन्द्र देव एवं उन एक जिनेन्द्र देव के आलम्बन से जिनालय सम्बन्धी वन्दना का वर्णन इसमें है।

(४) **प्रतिक्रमण–** दैवसिक, रात्रिक, ईर्यापथ, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक एवं औत्तमार्थिक प्रतिक्रमणों का कथन इसमें है।

(५) **वैनयिक–** सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, उपचार इन पाँच प्रकार की विनय का वर्णन इसके अन्तर्गत किया है।

(६) **कृतिकर्म–** अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु व जिनेन्द्र देव, जिनालयादि की पूजा, वंदनादि की विधि, कायोत्सर्ग आदि का वर्णन इसमें किया है।

(७) **दश वैकालिक–** स्वाध्याय (सिद्धान्त ग्रंथ, सूत्र ग्रन्थ व रहस्य ग्रंथों का) के अयोग्य १० वैकालों का (अकालों का) वर्णन इसमें किया गया है। मुनियों के आचार व गोचर विधि का भी इसमें वर्णन है।

(८) **उत्तराध्ययन–** जिसमें अनेक प्रकार के उत्तर पढ़ने को मिलते हैं, वह उत्तराध्ययन है, इसमें चार प्रकार के उपसर्ग, बाइस परीषहजयों को सहन करने की विधि के उत्तरों का वर्णन है।

(९) **कल्प्य व्यवहार–** साधुओं के योग्य आचरण का एवं अयोग्य आचरण हो जाने पर प्रायश्चित की विधि का वर्णन इसमें किया गया है।

(१०) **कल्पाकल्प–** द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से मुनियों के लिए योग्य-अयोग्य का वर्णन करने वाला।

(११) **महाकल्प्य–** काल और संहनन के आश्रय से साधु के योग्य द्रव्य व क्षेत्रादि का वर्णन करता है।

(१२) **पुण्डरीक–** भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी एवं वैमानिक देवों में उत्पत्ति के कारणभूत, दान, पूजा, तपश्चरण, भक्ति, संयमासंयम आदि अनुष्ठानों का वर्णन करता है ।

(१३) **महापुण्डरीक–** इसमें समस्त इन्द्रों, प्रतीन्द्रों में उत्पत्ति के कारणभूत विशेष भक्ति, पूजा, तपश्चरण, आचरण, संयमादि का कथन किया गया है।

(१४) **निषिद्धिका–** बहुत प्रकार के प्रायश्चित का वर्णन करने वाले शास्त्र को निषिद्धिका कहते हैं। अतैव इसमें प्रायश्चितों का वर्णन है।

प्रश्न ४९. अंग बाह्य में कितने पद हैं ? अक्षरों का प्रमाण कितना है ?

उत्तर- अंग बाह्य में विद्यमान अक्षरों का प्रमाण, पद के प्रमाणभूत अक्षरों से कम है, अर्थात् इसमें अक्षरों का प्रमाण-आठ करोड़, एक लाख, आठ हजार, एक सौ पिचहत्तर (८,०१,०८,१७५) है, अतैव इसमें श्लोकों का प्रमाण-पच्चीस लाख, तीन हजार, तीनसौ अस्सी श्लोक + पन्द्रह अक्षर (२५,०३,३८० श्लोक + १५ अक्षर) प्रमाण है ।

प्रश्न ५०. उपाध्याय परमेष्ठी व श्रुत केवली एक ही हैं या अलग-अलग हैं ? एवं उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति करने का फल क्या है ?

उत्तर- उपाध्याय परमेष्ठी ग्यारह अंग व चौदह पूर्व के पाठी होते हैं जबकि श्रुत केवली सम्पूर्ण श्रुत के ज्ञाता होते हैं, श्रुत केवली भी समवशरण में उपाध्याय परमेष्ठी की तरह होते हैं। उपाध्याय परमेष्ठियों की भक्ति करने से सम्पूर्ण श्रुतज्ञान, संयम, क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति एवं परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

******

पोत्थ पडेदि सत्थं वा, गुरुपदं ण सेवदे ।
सोहदे ण सहामज्झे, विडुप्पण्णो सिसोव्व सो ।। १४ ।।

जो पुस्तक या शास्त्र पढ़ता है किन्तु, गुरु चरणों की सेवा नहीं करता वह विट पुरुष से उत्पन्न शिशुवत् सभा के मध्य में सुशोभित नहीं होता ।

– णंदिणंद सुत्तं (नंदी नंद सूत्र) १४
(आ. वसुनंदी मुनि)

अध्याय–६

साधु परमेष्ठी

प्रश्न १. साधु परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो अनगार विषय–वासना–कषाय–आरंभ–परिग्रह से विरक्त या रहित हैं एवं ज्ञान ध्यान–तप में लीन रहते हैं, वे साधु परमेष्ठी कहलाते हैं अथवा जो साधक संसार, शरीर, भोगों से पूर्ण विरक्त हों, हिसांदि पाँचों पापों का संकल्प पूर्वक नवकोटि से त्याग कर, अहिंसादि सकल महाव्रतों का पालन करते हैं, २८ मूल गुणों एवं ३४ उत्तर गुणों से सहित हैं वह साधु परमेष्ठी कहलाते हैं।

प्रश्न २. अनगार किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो गृह, वस्त्रादि दस प्रकार के बाह्य परिग्रह एवं यथाशक्य आभ्यंतर परिग्रह के त्यागी हैं, २८ मूल गुणों का पालन करते हैं, वे अनगार कहलाते हैं।

प्रश्न ३. विषय किसे कहते हैं ?

उत्तर– स्पर्श, रस, गंध, वर्ण एवं शब्दादि इन्द्रियों से ग्रहण किये जाने वाले पदार्थ विषय कहलाते हैं। पाँचों इन्द्रियों के मुख्य रूप से ५ एवं उत्तर भेदों की अपेक्षा से २७ विषय होते हैं।

प्रश्न ४. पाँचों इन्द्रियों के सत्ताईस (२७) विषय किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर– **स्पर्शन इन्द्रिय के आठ** (हल्का, भारी, कड़ा, नरम, रूखा, चिकना, ठण्डा, गर्म)**+ रसना इन्द्रिय के पाँच** (खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा व कषायला) **+ घ्राण इन्द्रिय के दो** (सुगंध, दुर्गन्ध) **+ चक्षु इन्द्रिय के पाँच** (वर्ण–लाल, पीला, नीला, काला, सफेद) **+ कर्णेन्द्रिय के सात** (षड़ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद) = २७ (सत्ताईस) पंचेन्द्रिय के विषय हैं, जिनसे साधु परमेष्ठी विरक्त रहते हैं अथवा–पाँचों इन्द्रियों को तृप्त करने हेतु, इन्द्रियों के लिए इच्छित/इष्ट भोग्यउपभोग्य, रमणीय, रागोत्पादक पदार्थों में इन्द्रियों की प्रवृत्ति विषय कहलाती है।

प्रश्न ५. वासना शब्द से आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर– इन्द्रिय के विषयों एवं संसारवर्धक पाप कार्यों में तीन योगों की लीनता या आसक्ति ही वासना कहलाती है। साधु वर्ग विषय–पाप आदि की वासना से दूर रहते हैं।

प्रश्न ६. कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो आत्मा को कसे या कृषे, वह कषाय है। जैसे रस्सी, सांकल आदि बंधनों से किसी को कसना, मजबूत / दृढ़ बंधनों में बाँधना एवं किसान के द्वारा हल से भूमि को कृषा (जोता) जाना। ये कषायें आत्मा को कर्म के बंधनों में – कसती हैं एवं कर्म–रूपी फसल अधिक पैदा हो इसलिए आत्मा रूपी भूमि को कृषती (जोतती) हैं।

प्रश्न ७. आरंभ किसे कहते हैं ?

उत्तर– कृषि, व्यापार, सेवा–मजदूरी, उद्योग, धंधे आरंम्भ कहलाते हैं अथवा पानी भरना, झाड़ू लगाना, कूटना, पीसना, कपड़े धोना, रसोई बनाना, रंगाई, बुनाई, सिलाई करना, काटना, फाड़ना, तोड़ना इत्यादि कार्य (जिनमें जीव हिंसा हो अथवा जीव हिंसादि की संभावना हो) आरंभ कहलाते हैं।

प्रश्न ८. परिग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर– पर पदार्थों में मूर्छा रखना परिग्रह है अथवा पर वस्तु को प्राप्त करने का भाव, मोह, रागादि भाव, या पर वस्तुओं को बुद्धि पूर्वक ग्रहण करना भी परिग्रह कहलाता है। इसके दो भेद हैं। (१) बाह्य परिग्रह (२) आभ्यंतर परिग्रह।

प्रश्न ९. बाह्य परिग्रह किसे कहते हैं ? एवं उसके कितने व कौन–कौन से भेद है ?

उत्तर– जो परिग्रह बाहर में दिखाई दे अथवा जिसे अन्य व्यक्ति भी देख सकें वह बाह्य परिग्रह कहलाता है, इसके दस भेद हैं जो कि निम्न है।

क्षेत्र वास्तु धनं धान्यं, द्विपदं च चतुष्पदं।

शय्यासनं च यानं च, कुप्य भाण्ड मिति द्वयम् ।।

(१) **क्षेत्र**–खेत (२) **वास्तु**–मकान (३) **धन**–स्वर्णादि (४) **धान्य**–अनाज (५) **द्विपद**–दासी–दास, (६) **चतुष्पद**–गाय, भैंस आदि (७) **शय्या –** आसन (८) **यान**–वाहन (९) **कुप्य**–वस्त्र (१०) **भाण्ड** – बर्तन।

प्रश्न १०. अंतरंग परिग्रह किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं एवं कौन–कौन से हैं ? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– जो बाहर में, बाहर के छद्मस्थ व्यक्तियों द्वारा न दिखाई दे वह अंतरंग या आभ्यंतर परिग्रह कहलाता है, इसके चौदह भेद हैं जो कि निम्न हैं –

मिच्छत्त–वेय–राया–तहेव हस्सादिया य छद्दोसा।

चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरं गंथा ।।

अर्थात्- (१) मिथ्यात्व (२) पुरुष वेद (३) स्त्री वेद (४) नपुंसक वेद (५) हास्य (६) रति (७) अरति (८) शोक (९) भय (१०) जुगुप्सा (११) क्रोध (१२) मान (१३) माया (१४) लोभ, ये चौदह आभ्यंतर परिग्रह हैं।

प्रश्न ११. ज्ञान, ध्यान एवं तप की परिभाषायें क्या-क्या हैं ? बताने की कृपा करें।

उत्तर- **ज्ञानः-** जो जानता है या जिससे जाना जाये, या जानना मात्र ज्ञान कहलाता है, यहाँ ज्ञान शब्द का आशय सम्यक् ज्ञान से है एवं उस सम्यक्ज्ञान में पाँच प्रकार के स्वाध्याय रूप प्रवृत्ति ज्ञान में लीनता कहलाती है।

ध्यानः- ध्यान का आशय है चित्त की एकाग्रता। ज्ञान में या ज्ञेय में या ज्ञायक भाव में चित्त की एकाग्रता, निर्विकल्प अवस्था ध्यान कहलाती है। तत्व चिंतन को भी उपचार से ध्यान कहा जाता है। यहाँ ध्यान शब्द का आशय धर्म ध्यान या शुक्ल ध्यान से है।

तपः- इच्छाओं का निरोध करना तप कहलाता है, मन को इन्द्रिय विषय, सांसारिक, काम नाओं/भावनाओं से मुक्त कर लेना ही तप है, अथवा अनशनादि बारह प्रकार की साधना करना भी तप कहलाता है।

प्रश्न १२. साधु परमेष्ठी के कितने मूल गुण होते हैं एवं कौन-कौन से हैं ? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर- साधु परमेष्ठी के अट्ठाईस (२८) मूल गुण होते हैं, जो कि निम्नांकित है- पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक क्रियाएँ एवं सात विशेष गुण ये २८ (अट्ठाईस) मूल गुण हैं।

प्रश्न १३. साधु परमेष्ठी के उत्तर गुण कितने होते हैं ? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर- साधु परमेष्ठी के बाईस परीषहजय एवं बारह तप, ये चौंतीस उत्तर गुण होते हैं, विशेष रूप से चौरासी लाख (८४,००,०००) उत्तर गुण होते हैं।

प्रश्न १४. महाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर- हिंसादि पाँचों पापों का नव कोटि से पूर्णतः त्याग करना एवं अहिंसा आदि पाँच व्रतों का संकल्प पूर्वक पालन करना महाव्रत कहलाता है अथवा जो अपने आप में स्वयं महान हैं, महान अर्थ के साधक, महान व्यक्तियों द्वारा आचरित हैं एवं महानता को प्रदान करने वाले हैं वे महाव्रत कहलाते हैं।

प्रश्न १५. नव कोटि से त्याग करने का आशय क्या है ?

उत्तर- मन से, वचन से, काय से एवं कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना ही नव कोटि से त्याग करना कहलाता है अर्थात् मन से हिंसादि पाँचों पाप नहीं करना, न किसी से कराना

एवं किसी पाप करते हुए व्यक्ति की अनुमोदना (सम्मति प्रकट) नहीं करना, इसी प्रकार वचन से कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना एवं शरीर से भी कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना।

प्रश्न १६. महाव्रतों के कितने व कौन–कौन से भेद हैं ? बताने की कृपा करें।

उत्तर– महाव्रतों (सकल व्रतों) के पाँच भेद हैं, जो कि निम्नांकित हैं –

(१) अहिंसा महाव्रत– मन, वचन, काय एवं कृत, कारित, अनुमोदना से (नव कोटि से) सर्व प्रकार की हिंसा का पूर्णतः त्याग करना अहिंसा महाव्रत कहलाता है।

(२) सत्य महाव्रत– मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से असत्य का पूर्णतः त्याग करना ही सत्य महाव्रत कहलाता है अर्थात् सत्य को ही मन, वचन, काय व कृत, कारित अनुमोदना से प्रकट करना।

(३) अचौर्य महाव्रत– स्वकीय चेतन द्रव्य के अतिरिक्त अन्य सभी पर पदार्थों को ग्रहण न करने का भाव ही अचौर्य है, पर वस्तु को बिना स्वामी की अनुमति के ग्रहण करना या ग्रहण करने का भाव ही चोरी है। ऐसी चोरी का मन, वचन, काय एवं कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना ही अचौर्य महाव्रत कहलाता हैं।

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत– अब्रह्म (मैथुन) का नवकोटि से त्याग करके अपनी ब्रह्म स्वरूप आत्मा में लीन रहना ब्रह्मचर्य महाव्रत है । इसे शील महाव्रत भी कहते हैं। अपने स्वभाव/प्रकृति/स्वरूप में लीनता ही उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत हैं।

(५) अपरिग्रह महाव्रत– अपनी आत्मा के अतिरिक्त सम्पूर्ण पर पदार्थों में अनासक्त रहना, मूर्छा नहीं करना ही अपरिग्रह है। दस प्रकार बाह्य, परिग्रहों का पूर्णतः एवं चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह का भी नव कोटि से यथाशक्य त्याग करना ही अपरिग्रह महाव्रत हैं।

प्रश्न १७. समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर– चलने–फिरने में, बोलने–चालने में, आहार ग्रहण करने में, वस्तुओं को उठाने रखने में और मलमूत्रादि के त्याग करने में यत्न पूर्वक सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करते हुए जीवों की रक्षा करना समिति है अथवा–सावधानी पूर्वक प्राणी पीड़ा का परिहार करते हुए प्रवृत्ति करना ही समिति हैं।

प्रश्न १८. समिति के कितने भेद होते हैं और कौन–कौन से हैं, संक्षेप में व्याख्या सहित बताने की कृपा करें।

उत्तर– संयम की शुद्धि की कारण, पाँच प्रकार की समिति कही गई हैं, जो कि निम्न प्रकार हैं–

(१) **ईर्या समिति–** ईर्या का अर्थ है "गति (गमन)", समिति–सावधानी, अर्थात् सूर्योदय होने पर (दिन के प्रकाश में) चार हाथ जमीन शोधकर प्राणी रक्षा करते हुए प्रयोजन भूत गमन करना, संयमी साधकों की यह प्रथम ईर्या समिति है।

(२) **भाषा समिति–** स्व–पर को मोक्ष की ओर ले जाने वाले, स्व–पर हितकारक, असत्य, व्यर्थ, तथ्यहीन बकवास से रहित, मित, स्फुटार्थ, व्यक्ताक्षर, असंदिग्ध, प्रयोजनभूत प्रिय वचनों का बोलना भाषा समिति है अथवा–पैशून्य, हास्य, कर्कश, पर निंदा, आत्म प्रशंसा, विकथा व असत्यता से रहित हित–मित–प्रिय वचनों का प्रयोग ही भाषा समिति है।

(३) **एषणा समिति–** उद्गमादि ४६ दोष, ३२ अंतराय एवं १४ मल दोषों से रहित नव कोटि से शुद्ध आहार को षड्आवश्यकों (प्रयोजनभूत कार्यों) हेतु आदित्यालोक में ग्रहण करना एषणा समिति कहलाती है।

(४) **आदान–निक्षेपण समिति–** आदान का अर्थ है "उठाना" और निक्षेपण का अर्थ है "रखना"। साधुपुरुष–संयमोपकरण, ज्ञानोपकरण, शौचोपकरण एवं संस्तरादि उपकरणों का देखकर उठाना व रखना, जिससे जीव हिंसा नहीं हो, इस प्रकार की सम्यक् प्रवृत्ति करना आदान–निक्षेपण समिति है।

(५) **व्युत्सर्ग (प्रतिष्ठापन) समिति–** एकान्त, अचित्त, दूरस्थ, छिपा हुआ (आड़ सहित), बिल व छिद्र रहित, समचौरस, अनिन्द्य, अविरोधी स्थान में जीव रक्षा करते हुए भूमि को देखकर व प्रमार्जन करके मल–मूत्रादि का परित्याग करना साधु की व्युत्सर्ग (प्रतिष्ठापन) समिति कही जाती है।

प्रश्न १९. पंचेन्द्रिय निरोध का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर– स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण इन पाँचों इन्द्रियों की स्वेच्छाचारी वृत्ति का त्याग करके आगमानुसार इनकी प्रवृत्ति करना ये ही इन्द्रिय विजय अथवा पंचेन्द्रिय निरोध नामक मूल गुण कहा है।

प्रश्न २०. इन्द्रिय किसे कहते हैं, ये कितनी होती हैं व कौन–कौन सी हैं ? नाम बताऐं।

उत्तर– जिससे आत्मा के सूक्ष्म अस्तित्व का ज्ञान हो अर्थात्–जिससे संसारी जीव की पहचान की जाती है, वे इन्द्रियाँ कहलाती हैं अथवा जो अपने विषय में इन्द्रों के समान स्वतंत्र वर्तन करती हैं वे इन्द्रियाँ कहलाती हैं। ये पाँच होती हैं यथा नाम– (१) स्पर्शन (२) रसना (३) घ्राण (४) चक्षु (५) कर्ण।

प्रश्न २१. आवश्यक कार्य किसे कहते हैं ?

उत्तर– अवश्य करने योग्य कार्य आवश्यक कहलाते हैं अथवा जो किसी के वश में नहीं होते वे

अवश हैं, ऐसे अवश कार्य अर्थात् अवश्य करने योग्य कार्य ही आवश्यक कार्य कहलाते हैं।

प्रश्न २२. साधु परमेष्ठी के षडावश्यक कार्य कौन–कौन से हैं ? संक्षेप में व्याख्या सहित नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– षडावश्यक कार्य –

समता धरि वंदन करें, नाना थुति बनाय ।

प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण सह, कायोत्सर्ग लगाय ।।

साधु परमेष्ठी के छह आवश्यक कर्त्तव्य हैं, जो निम्नलिखित हैं –

(१) **समता–** समभाव को समता कहते हैं अथवा त्रैकाल में पंच नमस्कार, नव देवों की वंदनादि करना भी सामायिक है। अथवा–जीवन–मरण, लाभ–हानि, संयोग–वियोग, बंधु–शत्रु, कांच–कंचन, सुख–दुःख, भवन–श्मशान, शीत–उष्ण, अक्षेष्ट–निष्ट पदार्थों में, प्रतिकूलता व अनुकूलता में समभाव बनाये रखना समता है।

(२) **वंदना–** किसी भी एक तीर्थंकर, अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि का गुणोत्कीर्तन करना, नमस्कार करना, कायोत्सर्ग आदि करके भक्ति करना वंदना है।

(३) **स्तुति–** चतुर्विंशति तीर्थंकरों की सामूहिक भक्ति, अर्चना, उपासना, आराधना, स्तोत्रादि पढ़कर गुणानुवाद करना स्तुति कहलाती है।

(४) **प्रत्याख्यान–** भविष्य के लिए अयोग्य द्रव्य का त्याग करना अथवा तपश्चरण, संयम साधना व आत्म विशुद्धि के लिए सावद्य या निरवद्य पदार्थों का नियम या यम रूप से त्याग करना प्रत्याख्यान कहलाता है। क्वचित् ग्रंथों में प्रत्याख्यान के स्थान पर स्वाध्याय को ग्रहण किया है।

(५) **प्रतिक्रमण–** भूतकाल में, प्रमाद वश, अज्ञानतावश या कषायोदय से व्रतों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार दोषों को मिथ्या करने हेतु **"तस्स मिच्छा मे दुक्कडं"** कहते हुए अशुभ योग या तदपराध का त्याग करना प्रतिक्रमण कहलाता है।

(६) **कायोत्सर्ग–** नियत समय के लिए शरीर से ममत्व का त्याग करके, पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करना, कायोत्सर्ग कहलाता है।

प्रश्न २३. साधु परमेष्ठी के ७ विशेष गुण कौन–कौन से हैं ? बताने की कृपा करें।

उत्तर– साधु परमेष्ठी के सप्त विशेष गुण निम्नांकित हैं –

(१) **केश लोंच–** उत्तम, मध्यम, जघन्य रूप से क्रमशः दो माह, तीन माह, चार माह में जीव रक्षा, अयाचीक वृत्ति, शरीर से ममत्व त्याग व भेद विज्ञान का प्रतीक उपवास पूर्वक अपने

हाथों से सिर, दाड़ी, मूंछ के बाल उखाड़ना केश लोंच कहलाता है।

(२) **आचेलक्य–** ऊन, कपास, रेशम, चर्मज, वल्कज वस्त्रों से, छाल, पत्ते व तृण आदि से शरीर न ढकना, आभूषण आदि अलंकृत नहीं करना नग्न या आचेलक्य नाम का मूल गुण है।

(३) **अस्नान–** जल्ल, मल्ल एवं स्वेद से व्याप्त शरीर को स्वच्छ बनाने के लिए, स्नान, उबटन, सुगंधित पदार्थों से शरीर को संस्कारित करने का, नेत्रों में अंजनादि लगाने का त्याग अस्नान नाम का विशेष (व्रत) गुण है। अस्नान-संसार, शरीर व भोगों से विरक्ति की वृद्धि करने वाला है।

(४) **क्षिति शयन–** जिसके द्वारा संयम का विघात न हो ऐसे तृणमय, काष्टमय, शिलामय, भूमिमय इन चार प्रकार के संस्तरों में से किसी एक प्रकार के संस्तर पर, अपने शरीर प्रमाण या अपने द्वारा बिछाये संस्तर पर एकान्त व प्रासुक स्थान पर खेद व श्रम को दूर करने हेतु विश्राम करना वा अल्प निद्रा लेना क्षिति शयन नामक व्रत है।

(५) **अदन्त धावन–** दाँत सुन्दर दिखें इस उद्देश्य से अंगुली, नख, दांतोन, तृण, पत्थर या छाल आदि के द्वारा दाँतों का नहीं घिसना संयम रक्षा रूप अदन्त धावन नामक व्रत है किन्तु, दांतों में जीवोत्पत्ति न हो, संयम की विराधना न हो इसलिए कुल्ला अच्छी तरह से (गर्म जल, नमक आदि से) करना चाहिए ।

(६) **स्थिति भोजन–** दीवाल आदि के सहारे से रहित स्वकीय जंघावल से खड़े होकर निज पाणि पात्र (करांजलि पुट) में आहार करना स्थिति भोजन नामक व्रत है। श्रमण, बैठकर, लेटकर, तिरछे खड़े होकर इत्यादि आसनों से आहार नहीं लेते।

(७) **एक भुक्ति–** सूर्योदय के तीन घड़ी बाद से लेकर सूर्यास्त की तीन घड़ी पूर्व दिन में सामायिक (देव वंदना) स्वाध्याय आदि के काल को छोड़कर २४ घंटे में एक बार एक / दो / या तीन मुहूर्त के काल में शुद्ध, प्रासुक, दोष व अंतरायों को टालकर भोजन करना एक भुक्ति नाम का व्रत है।

प्रश्न २४. आपने उत्तर गुणों में परीषह जय कहे परीषह जय किसे कहते हैं ?

उत्तर– क्षुधादि वेदना के होने पर कर्मों की निर्जरा करने के लिए उसे सहन करना परीषह है, परीषहों को समता से जीतना परीषह जय है अथवा संयम के मार्ग से च्युत न होने के लिए, कर्मों की निर्जरा करने के लिए जो सहन करने योग्य हों, वे परीषह हैं, उन्हें समता से जीतना परीषह जय है।

प्रश्न २५. परीषहों के २२ भेद कौन–कौन से हैं ? जिन्हें मुनिमहाराज जीतते हैं ?

उत्तर– १. क्षुधा २. पिपासा ३. शीत ४. उष्ण ५. दंश मशक ६. नग्नता ७. अरति ८. स्त्री ९. चर्या

१०. निषद्या ११. शय्या १२. आक्रोश १३. वध १४. याचना १५. अलाभ १६. रोग १७. तृण स्पर्श १८. मल १९. सत्कार-पुरस्कार २०. प्रज्ञा २१. अज्ञान २२. अदर्शन-ये २२ परीषह होते हैं, जिनको दिगम्बर जैन श्रमण समता से जीतते हैं।

प्रश्न २६. साधु परमेष्ठी के उत्तर गुणों में १२ तप भी कहे थे तप किसे कहते हैं ? वे बारह तप कौन-कौन से हैं ? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर- पूर्व में बाँधे हुए कर्मों की एक देश निर्जरा एवं वर्तमान काल में संवर का जो प्रधान हेतु होता है, सम्पूर्ण दुःसाध्य पदार्थों को सिद्ध कराने में समर्थ एवं जो अभ्युदय का कारण होता है वह तप कहलाता है। वह बारह प्रकार का तप निम्नलिखित है- (१) अनशन (२) ऊनोदर (३) वृत्ति परिसंख्यान (४) रस परित्याग (५) विविक्त शय्यासन (६) कायक्लेश-ये छह बाह्य तप हैं तथा (१) प्रायश्चित (२) विनय (३) वैय्यावृत्ति (४) स्वाध्याय (५) व्युत्सर्ग (६) ध्यान-ये छह अंतरंग तप हैं ।

प्रश्न २७. दिगम्बर साधुओं के मुख्य रूप से कितने भेद हैं एवं कौन-कौन से हैं ? संक्षेप में व्याख्या सहित समझाने की कृपा करें।

उत्तर- दिगम्बर साधुओं के साधना/संहनन की अपेक्षा से दो भेद हैं -

(१) जिन कल्पी- जो उत्तम संहननधारी हैं, धूल, कंटक, तृणादि आँख में गिर जाने पर खुद नहीं निकालते, जल वर्षादि के समय-६ मास तक योग धारण करते हैं, ११ अंग के धारी, धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान में तत्पर, मौनव्रती, गिरिकन्दरा में निवास करने वाले, सर्व परिग्रह रहित, अत्यंत निस्पृही, यतिपति, तीर्थंकरों के समान विचरण करने वाले जिनकल्पी मुनि होते हैं, ऐसे संतों का जन्म चतुर्थ काल में होता है, जब तीर्थंकरादि महापुरुष जन्म लेते हैं।

(२) स्थिविर कल्पी- अट्ठाईस मूल गुणों का पालन करने वाले, ग्राम, नगर, पुर के जिनालय, जिन भवन, उपाश्रय, वसतिका, शिक्षा गृह, विश्रामग्रह व धर्मशालादि में निवास करने वाले, सामान्य साधना करने वाले, हीन संहनन युक्त अनगार स्थिविर कल्पी होते हैं।

प्रश्न २८. साधुओं के चार भेद भी सुनने में आते हैं, वे कौन-कौन से हैं ?

उत्तर- हाँ ! साधु के चार भेद भी होते हैं, जिनसे मिलकर या जिसे चातुवर्ण श्रमण संघ के नाम से पुकारा जाता है। वे निम्नांकित हैं -

(१) ऋषि- जो साधक ऋद्धि-सिद्धियों से सम्पन्न, विशिष्ट विद्याओं के धनी होते हैं वे दिगम्बर संत ऋषि कहलाते हैं।

(२) मुनि- जो साधक प्रत्यक्ष ज्ञान (अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान) से युक्त हों, ऐसे परमोत्कृष्ट साधक मुनि कहे जाते हैं।

(३) **यति–** जो दिगम्बर संत विशिष्ट साधना द्वारा–उपशम या क्षपक श्रेणी पर आरोहण करते हैं उस समय वे यति कहे जाते हैं।

(४) **अनगार–** जो गृह, वस्त्रादि समस्त बाह्य परिग्रह व यथाशक्य अंतरंग परिग्रह के त्यागी हों, २८ मूल गुणों का पालन करते हों, सामान्य साधना से युक्त साधक दिगम्बर संत अनगार कहलाते हैं।

प्रश्न २९. पद की अपेक्षा से दिगम्बर साधुओं के तीन भेद कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– पद की अपेक्षा से दिगम्बर साधु के तीन भेद हैं– (१) आचार्य (२) उपाध्याय (३) साधु। सामान्यतया इन तीनों में कोई भेद नहीं, किन्तु विशेष दृष्टि से भेद यह है कि– आचार्य व उपाध्याय श्री ने संघ संचालन का, शिक्षा–दीक्षा देने का, स्वपर–हित का भार भी स्वीकार किया है जबकि, साधु परमेष्ठी परकल्याण के भार से मुक्त, स्व–कल्याण में पूर्ण समर्पित हैं, उक्त आचार्य व उपाध्याय के पद को छोड़े बिना उत्तम समाधि की प्राप्ति भी नहीं हो सकती । आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तीनों ही गुरु कहलाते हैं।

प्रश्न ३०. निर्ग्रन्थ साधुओं के पाँच भेद कौन–कौन से हैं ? संक्षेप में समझाने की कृपा करें।

उत्तर– (१) पुलाक, (२) बकुश, (३) कुशील, (४) निर्ग्रंथ, (५) स्नातक, ये पाँच निर्ग्रंथ साधुओं के भेद हैं

(१) **पुलाक निर्ग्रन्थ–** उत्तर गुणों की भावना से रहित, मूलगुणों में भी दोष लगाने वाले साधु पुलाक कहे जाते हैं। ये अविशुद्ध पुलाक (तुच्छ धान्य) के समान होने से पुलाक कहे जाते हैं।

(२) **बकुश निर्ग्रन्थ–** जो निर्ग्रन्थ होते हैं, व्रतों का अखण्ड रूप से पालन करते हैं, शरीर और उपकरणों की शोभा बढ़ाने में लगे रहते हैं, गृह परिवार से घिरे रहते हैं, विविध प्रकार के मोह से युक्त होते हैं, वे बकुश कहलाते हैं। शबल (मलिन/ चितकवरा) चारित्र से युक्त मुनि बकुश हैं।

(३) **कुशील निर्ग्रन्थ–** जो कषाय के उदय से सातिचार चारित्र का पालन करने वाले हैं, परिग्रहासक्त हैं, वे कुशील नामक निग्रंथ हैं, इनके दो भेद होते हैं।

(I) प्रतिसेवना कुशील– जो परिग्रह से घिरे रहते हैं, मूल–उत्तर गुणों से परिपूर्ण हैं, लेकिन कभी–कभी उत्तरगुणों की विराधना करते हैं वे प्रति सेवना कुशील हैं। –

(II) कषाय कुशील– जिन्होंने अन्य कषायों को जीत लिया है, मात्र संज्वलन कषाय के आधीन हैं, संज्वलन कषाय के तीव्र उदय से कदाचित् व्रतों में दोष लग जाते हैं, वे कषाय कुशील निर्ग्रन्थ हैं।

(४) **निर्ग्रन्थ मुनि–** जिस प्रकार जल में लकड़ी से खींची गई रेखा अप्रकट है, उसी प्रकार जिनके कर्मों का उदय अप्रकट है और जो अन्तर्मुहूर्त के बाद केवल दर्शन व केवल ज्ञान को प्राप्त करते हैं, वे निर्ग्रन्थ मुनि कहलाते हैं।

(५) **स्नातक निग्रंथ–** जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है, वे सयोग केवली एवं अयोग केवली मुनिराज स्नातक कहलाते हैं।

प्रश्न ३१. पुलाक निग्रंथ की व्याख्या में अविशुद्ध पुलाक शब्द का प्रयोग किया है ? अविशुद्ध पुलाक किसे कहते हैं ?

उत्तर– मलिन चावल को पुलाक कहते हैं अर्थात् चावल में कुछ तुष लालिमा आदि लगी रहती है, उस मलिन चावल को पुलाक कहते हैं, मलिन तन्दुल के समान अपरिपूर्ण व्रत धारण करने वाले होने से निर्ग्रन्थ की भी पुलाक संज्ञा है, इस पुलाक शब्द को ही स्पष्ट करने हेतु अविशुद्ध पुलाक कहा है।

प्रश्न ३२. ये पाँचों मुनिराज निर्ग्रन्थ हैं या सग्रंथ हैं ?

उत्तर– ये (पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नातक) पाँचों ही मुनिराज निर्ग्रन्थ हैं, सग्रंथ नहीं क्योंकि, मुनिराज निर्ग्रंथ ही होते हैं, सग्रंथ कोई मुनि नहीं होते, सग्रन्थ तो श्रावक कहलाता है। ये पाँचों ही भाव लिंगी मुनि कहलाते हैं, पाँचों ही उसी भव से मोक्ष भी जा सकते हैं, निर्ग्रंथ व स्नातक तो नियम से उसी भव से मोक्ष जाते ही हैं, पुलाक, बकुश, कुशीलादि भी जा सकते हैं ये सभी मुनिराज श्रावकों द्वारा श्रद्धेय, उपास्य, वंदनीय, पूजनीय व अर्चनीय है।

प्रश्न ३३. भाव लिंगी मुनि किसे कहते हैं ?

उत्तर– ग्रह आदि परिग्रह से रहित, मानादि कषाय (अनुतानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान सम्बन्धी–क्रोध, मान, माया, लोभ) से रहित, आत्मा को आत्मा में निमग्न करने के लिए पुरुषार्थरत साधु भाव लिंगी मुनि कहलाते हैं अथवा–जिन्होंने आत्म कल्याण के भाव/उद्देश्य से जिन दीक्षा ग्रहण की है, जिन के परिणाम मुनित्व से युक्त हैं, वे सभी भाव लिंगी मुनि कहलाते हैं बिना द्रव्य लिंग को अंगीकार किये भाव लिंग की प्राप्ति नहीं हो सकती। द्रव्य लिंग साधन/कारण है एवं भाव लिंग साध्य/कार्य है।

प्रश्न ३४. द्रव्य लिंग किसे कहते हैं ?

उत्तर– द्रव्य लिंग का आशय है, तदनुरूप परिणामों से रहित अवस्था अर्थात शरीर से उस अवस्था को प्रकट करना। मुनित्व रहित मात्र दिगम्बर/नग्नभेष लिंग द्रव्य लिंग हैं, श्रावकत्व/श्रावकपने से रहित अवस्था द्रव्य लिंगी श्रावक की अवस्था है। आत्म कल्याण की भावना, समीचीन वैराग्य एवं रत्नत्रय से रहित अवस्था द्रव्य लिंग की अवस्था है।

प्रश्न ३५. क्या पंचम काल में भाव लिंगी मुनि होते हैं ? भाव लिंगी मुनि कब तक रहेंगे ?

उत्तर- हाँ ! पंचमकाल में भाव लिंगी मुनि होते हैं, होते थे एवं पंचमकाल के अंत तक होते रहेंगे। जब तक भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्रों में स्थूल अग्नि है, निर्मल सलिल सरिताएँ प्रवाहित हैं, तब तक भाव लिंगी मुनि होते रहेंगे, मुनित्व का लोप होते ही अग्नि, निर्मल सलिल सरिताओं का भी लोप हो जायेगा। आज के मुनि लौकान्तिक देव बनकर अगले भव से मोक्ष भी जा सकते हैं। विदेह क्षेत्र में सदैव चतुर्थकाल विद्यमान होने से, वहाँ तीर्थंकरादि महापुरुष व मुनिराजों का सदैव सद्भाव रहता है।

३६. क्या पंचमकाल में भाव लिंगी मुनि होने का आगम में कहीं उल्लेख है या ऐसा कोई प्रमाण है, जिससे पंचमकाल में भाव लिंगी मुनि का सद्भाव सिद्ध हो सके ?

उत्तर- पंचमकाल में इन्द्रभूति गौतम, सुधर्माचार्य, जम्बू स्वामी, श्रीधर आदि केवली, ग्यारह श्रुतकेवली, ११ अंगों के ज्ञान के धारक मुनिराज ११ हुए तथा कुन्दकुन्द स्वामी, उमास्वामी, समंतभद्र स्वामी, पूज्यपाद स्वामी, शिवकोटि आचार्य, अकलंक स्वामी, वीरसेन, जिनसेन, रविसेन, महासेन आदि अनेकों आचार्य भगवंत हुए इनके पूर्व धरसेन, पुष्पदंत, भूतबली, नागहस्ति, आर्य मंक्षु, काण भिक्षु, गुणधर, यतिवृषभादि आचार्य हुए जिन्होंने अपने शास्त्रों में पंचमकाल में भाव लिंगी मुनि होने का कथन किया है, भूतकालीन ये सभी मुनि पुंगव, रत्नत्रय के साधक मुनिवर भाव लिंगी थे, वर्तमान काल में व्यवहार व निश्चय रत्नत्रय की साधना में संलग्न अनेकों मुनिराज हमारे सामने विराजमान हैं तथा भविष्य में भी भावलिंगी मुनि पंचमकाल के अंत तक होते रहेंगे। जब तक भावलिंगी मुनि हैं तब तक स्थूल अग्नि व जल विद्यमान रहेगा।

प्रश्न ३७. भाव लिंगी की पहचान श्रावक कैसे करें ? श्रावक किन मुनियों को मानें ? यदि मुनिराजों को सच्चे गुरु न मानें तो क्या हानि है ?

उत्तर- भावों की पहचान प्रत्यक्ष ज्ञानी ही कर सकते हैं, श्रावक व अल्पज्ञ श्रमण भी नहीं कर सकते । श्रावकों का कर्त्तव्य है कि दिगम्बर संत को देखकर, पिच्छी कमण्डल, शास्त्रादि के अतिरिक्त सर्व परिग्रह रहित हों, केश लोंच करते हों, एक बार खड़े होकर हाथ में आहार लेते हों, २८ मूलगुणों का पालन करने वाले वे सभी निग्रंथ भावलिंगी साधु ही है, ऐसा मानना चाहिए। यदि कोई श्रावक, श्रमण ऐसा नहीं करता तो वह सम्यक्त्व को भी प्राप्त नहीं कर सकता । सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व धर्म के स्वरूप को न मानने वाला / नकारने वाला मिथ्यादृष्टि मानना चाहिए, मिथ्यादृष्टि संसार में परिभ्रमण करता है एवं दारुण दुःखों को प्राप्त करता है।

प्रश्न ३८. पंचमकाल के मुनियों को आचार्यों ने किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर– जिन साधकों की भिक्षा, वचन, हृदय एवं चर्या आगमानुसार परिशुद्ध है, ऐसे साधुओं को कुन्द–कुन्द स्वामी ने भगवान शब्द से सम्बोधन किया है, कहीं उन्हें धरती के देवता कहा है, कहीं कलिकाल तीर्थंकर, कहीं तीर्थंकरों के लघु नन्दन आदि शब्दों से सम्बोधित किया है।

प्रश्न ३९. इस कलिकाल में आचार्य सोमदेव स्वामी ने सबसे बड़ा आश्चर्य क्या बताया है?

उत्तर– इस कलिकाल में मनुष्यों का चित्त विशेष चलायमान / चंचल है, यह शरीर अन्न का कीड़ा बना हुआ है, वर्तमानकाल में मिथ्यादृष्टि, अधर्मी, हिंसक, असत्यवादी, विटपुरुषों व विषय वासनाओं को जाग्रत करनेवाले साधनों की प्रचुरता है, ऐसे कलिकाल में दिगम्बर जिन मुद्रा को धारण करने वाले मुनि (जो तीर्थंकर के स्वरूप के दर्शायक हैं) विद्यमान हैं यह कलिकाल का सबसे बड़ा चमत्कार / अतिशय या आश्चर्य है।

प्रश्न ४०. मुनिराज / साधुओं के पर्यायावाची नाम कौन–कौन हैं ?

उत्तर– मुनि, श्रमण, यति, ऋषि, अनगार, भदंत, प्रवचन, मोक्ष मार्ग, यमी, दांत, संयमी, संयत, दिगम्बर, दिग्वासा, वातरसना, शुद्धोपयोगी, वीतरागी, रत्नत्रयधारी, साधक, वर्णी, व्रती, महाव्रती, त्यागी, तपस्वी, दीक्षित.....।

प्रश्न ४१. कृतिकर्म किसे कहते हैं ? श्रमण अहोरात्रि में कितने कृतिकर्म करते हैं ?

उत्तर– पापों के विनाशन का उपाय कृतिकर्म है, अथवा जिन अक्षर समूह, पद, वाक्यों के पाठ से अथवा जिन परिणामों से अथवा जिन क्रियाओं से अष्ट कर्म नष्ट किये जाते हैं, वह आवर्त्त, शिरोनति, स्तुति, वंदना, कायोत्सर्ग आदि क्रिया कृतिकर्म कहलाती हैं अथवा जिस क्रिया को करता हुआ साधु कृत्य–कृत्य हो जाता है (कृत्यकृत्य अवस्था–मोक्ष / सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है) उसे कृतिकर्म कहते हैं। श्रमण / साधु अहोरात्रि में २८ (अट्ठाईस) कृति कर्म करते हैं–**यथा** दोबार के प्रतिक्रमण में आठ + चार बार के स्वाध्याय में बारह + तीन बार की देव वंदना (सामायिक) में छह + रात्रि योग प्रतिष्ठापन व निष्ठापन मे दो, इस प्रकार अट्ठाईस कृति कर्म साधु नित्य करते हैं।

प्रश्न ४२. साधु परमेष्ठी को और कहाँ–कहाँ लोक श्रेष्ठ या मंगल देवता माना है ? अर्थात् उनका महत्व किस रूप में है ?

उत्तर– साधु परमेष्ठी को लोक में मान्य चार उत्तमों में, चार मंगलों में, चार शरणों में, नव देवताओं में एवं पाँच परमेष्ठियों में शामिल किया गया है। साधु का पद वह सर्वोत्तम पद है जिसे प्राप्त करके मोक्ष को भी प्राप्त किया जा सकता है, साधु का पद मोक्षमार्ग का प्रथम सोपान है,

इसके बिना अन्य सोपान प्राप्त कर पाना असंभव है, साधु ही आचार्य, उपाध्याय होते हैं, साधु पद में ही कभी-कभी आचार्य-उपाध्याय को भी सम्मिलित कर लिया जाता है। अधिक क्या कहें साधु को भगवत् रूप में भी स्वीकार किया है।

प्रश्न ४३. साधु के कम से कम कितने व कौन-कौन से आवश्यक कर्तव्य हैं ? जिनके बिना साधु-साधु नहीं कहलाता है।

उत्तर- आचार्य भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी ने रयणसार में जहाँ श्रावक के लिए दान, पूजा अनिवार्य कर्त्तव्य कहे, वहीं साधु के लिए ध्यान और अध्ययन अनिवार्य कहा। ध्यान और अध्ययन से रहित साधु-साधु नहीं होता।

प्रश्न ४४. व्यवहार साधु के १० स्थिति कल्प कौन-कौन से हैं ?

उत्तर- व्यवहार साधु के दस स्थिति कल्प निम्नांकित हैं-१. अचेलकत्व २. उदिष्ट भोजन त्याग ३. शय्या निर्माण त्याग ४. राज पिंड का त्याग ५. कृति कर्म ६. व्रत (योग्य व्यक्ति को दीक्षा, त्याग) ७. अपने से ज्येष्ठों की विनय करना ८. प्रतिक्रमण ९. मासैक वासिता-अर्थात् प्रत्येक ऋतु में एक माह पर्यंत निवास करना १०. पद्म-वर्षाकाल में चार माह पर्यंत एक स्थान पर निवास करना।

प्रश्न ४५. साधु परमेष्ठी के तेरह करण एवं चरण कौन-कौन से हैं ?

उत्तर- पंच परमेष्ठी को नमस्कार करना-५ + षडावश्यक कर्त्तव्यों का पालन करना ६ + १ निस्सहि अर्थात् जिनालयादि में प्रवेश करते समय निःसहि कहना + १ अस्सहि **अर्थात** जिनालय आदि से निकलते समय अस्सहि कहना = १३ करण । निस्सहि एवं १ "अस्सहि" शब्द का प्रयोग जंगल में प्रवेश करते समय, छोड़ते समय, मल-मूत्र का त्याग करते समय भी किया जाता है। पाँच महाव्रत + पाँच समिति + तीन गुप्ति = ये तेरह प्रकार का चारित्र है।

प्रश्न ४६. क्या इसके अतिरिक्त साधु परमेष्ठी के अन्य भी गुण होते हैं, यदि हाँ तो वे कौन-कौन से हैं, कृपया बताने की कृपा करें।

उचर- अट्ठाईस मूलगुण एवं चौंतीस उत्तर गुणों के अतिरिक्त साधु परमेष्ठी के (चौदह) १४ अन्य भी गुण आचार्य भगवन् श्री वीरसेन स्वामी जी ने कहे हैं, जो निम्नांकित हैं- यथा- **१. सिंह-** सिंह के समान पराक्रमी, **२. गज-** हाथी के समान स्वाभिमानी या उन्नत, **३. वृषभ-** बैल के समान भद्र प्रकृति वाले **४. मृग-** मृग के समान सरल प्रकृति वाले **५. पशु-** पशु के समान निरीह गोचरी वृत्ति वाले **६. मारुत -** पवन के समान निःसंग या सब जगह बेरोक-टोक गमन करने वाले, **७. सूर्य-** सूर्य के समान तेजस्वी या सकल तत्वों के प्रकाशक, **८. उदधि-** सागर के समान गम्भीर, **९. मंदर-** सुदर्शन मेरू के समान अपने संयम में अटल /

अडिग, १०. **इन्दु–** चन्द्रमा के समान शांतिदायक। ११. **मणि–** मणि के समान प्रभा पुंज युक्त, १२. **क्षिति–** पृथ्वी के समान सर्व प्रकार की बाधाओं को सहन करने वाले एवं क्षम ाशील, १३. **उरग–** सर्प के समान अनियत वसतिका में रहने वाले, १४. **अम्बर–** आकाश के समान निरालम्बी व निर्लेप और सदाकाल परमपद का अन्वेषण करने वाले साधु होते हैं। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य वीरसेन स्वामी के शब्दों में –

सीह–गय–वसह–मिय–पशु–मारुद सूरूवहि–मंदरिंदु मणी।

खिदि–उरंगवर–सरिसा परम–पय विमग्गया साहू।।१।१।१.१।

गा. ३३/५१. धवला जी.

प्रश्न ४७. साधुओं के दर्शन, पूजन आदि करने से क्या लाभ हैं ?

उत्तर– साधुओं के दर्शन, वंदना, अर्चना, उपासना, भक्ति, पूजा, स्तुति आदि करने से पापों व कर्मों का क्षय होता है, साधुओं के दर्शन पुण्य से होते हैं तथा पुण्य के लिए प्रेरक होते हैं, साधु ही चलतीर्थ हैं, अचल तीर्थ तो कालान्तर में फलित होते हैं किन्तु चलतीर्थ (साधु परमेष्ठी का समागम) सद्य फल प्रदाता होता है। जिन निग्रंथ गुरु का दर्शनादि मंगल, शुभ, भद्र, सातिशय पुण्यास्त्रव व बंध का कारण, पूर्वबद्ध पाप कर्म की निर्जरा का हेतु और परंपरा से मोक्ष का हेतु होता है। जिस प्रकार सूर्य के दर्शन से अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार दिगम्बर संत के दर्शन से दुःखों का अंत हो जाता है।

प्रश्न ४८. पार्श्वस्थ साधु किसे कहते हैं ? एवं उनके कितने व कौन–कौन से भेद है ?

उत्तर– जो साधु सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप आदि से रहित हैं किन्तु, संयम के पार्श्व भाग में रहते हैं अर्थात् बाहर में भी संयम का पालन सातिचार रूप से करते हैं, अंतरंग में जो साधु संयम शून्य है, वे साधू पार्श्वस्थ मुनि कहलाते हैं। इन पार्श्वस्थ मुनियों के पाँच भेद होते हैं– (१) पार्श्वस्थ (२) कुशील (३) संसक्त (४) अवसन्न (५) मृगचारी।

प्रश्न ४९. शील के अट्ठारह हजार भेद कौन–कौन से हैं बताने की कृपा करें?

उत्तर– ३ योग X ३ करण X ४ संज्ञा X ५ इन्द्रिय X १० संयम X १० धर्म = १८,००० शील के भेद होते हैं। मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से आहार, भय, मैथुन, परिग्रह चारों संज्ञाओं को, ५ इन्द्रिय विषयों को जीतना तथा दस प्रकार के संयम व श्रमण धर्म का मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना पूर्वक पालन करना। ये शील के अट्ठारह हजार भेद हैं।

प्रश्न ५०. कौन साधु एकल विहारी हो सकता है, कौन एकल विहार करने का पात्र नहीं है ? यदि पंचमकाल में कोई साधु एकल बिहार करे तो क्या बाधा है ?

उत्तर– तप, सूत्र, शरीर व मन के बल से युक्त हो, एकत्व भावना में रत हो, शुभ परिणाम, उत्तम संहनन तथा धृति अर्थात् मनोबल से युक्त हो, दीक्षा व आगम में बलवान हो अर्थात तपोवृद्ध, ज्ञान वृद्ध, आचार कुशल व आगम कुशल गुण विशिष्ट जिनकल्पी साधु को ही जिनेश्वर ने अकेले विहार के लिए सम्मति दी है। इन गुणों से रहित साधु को अकेले (एकल) बिहार की आज्ञा नहीं है, यदि कोई साधु पंचमकाल में इन गुणों से रहित होता हुआ भी एकल विहार करता है तो दीक्षा गुरु की निंदा, श्रुत का विनाश, जिन शासन में कलंक, मूर्खता, विह्वलता, कुशीलपना, पार्श्वस्थता आदि दोषों, कांटे, स्थाणु, क्रोधित बैल, कुत्तादि जानवर, सर्प, म्लेच्छ, विष अजीर्ण, आदि के द्वारा दुःखों को या भरण को प्राप्त करता है। एकाकी स्वच्छन्द विहार से जिनाज्ञा लोप, अति प्रसंग, मिथ्यात्वाराधना, सम्यक्त्वादि गुणों का नाश, संयमघात में पाप स्थान भी अवश्य होते हैं। एकल विहारी साधु शिथिलाचारी, गर्वयुक्त, भोगों की इच्छा वाला, कुटिल स्वभावी, लोभी, पाप बुद्धि होता है, जो अन्य यथार्थ सन्मार्ग के पथिक साधुओं के साथ नहीं रहना चाहता। आचार्य भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी जी ने कहा है कि जो साधु स्वच्छंद उठना, बैठना, सोना, वस्तु ग्रहण करना, देना, भिक्षा ग्रहण करना, मल त्याग आदि क्रियायें करना तथा स्वेच्छानुसार आगम विरहित वचनों को बोलने वाला है, ऐसा साधक मेरा शत्रु भी हो तो भी एकल विहार न करे।

******

जह भवणेसु थंभा, तह जिणसासणथंभा णिग्गंथा
थभं विणा ण भवणं, णिग्गंथं विणा ण सिवपहो ।।

जिस प्रकार भवनों में स्तम्भ होते हैं उसी प्रकार निर्ग्रन्थ जिनशासन के स्तम्भ है जिस प्रकार स्तम्भ के बिना भवन नहीं होता उसी प्रकार निर्ग्रन्थ मुनिराज के बिना शिवपथ नहीं होता है

णिग्गंथ थुदी (निर्ग्रन्थस्तुति)-९९

अध्याय–७

मंगलोत्तमशरण

प्रश्न १. मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो पापों को नष्ट करके, परमाह्लाद को देने वाले हैं, उन्हें मंगल कहते है ।

प्रश्न २. मंगल का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है ?

उत्तर– मंगल शब्द का विच्छेद करने पर मंगल में "म" का अर्थ होता है "पाप"एवं "गल" शब्द का अर्थ है "गलाये", "**मम् पापं गालयति इति मंगल**" **अर्थात्** जो पापों को गलाये वह मंगल है अथवा मंगल इस प्रकार विच्छेद करने पर "मंग" शब्द का अर्थ है–सुख, आनन्द, आल्हाद, उत्साह, इत्यादि एवं "ल" वर्ण का अर्थ है–लाये, प्राप्त कराये–" **मंगं सुखं लालयति इति मंगलम्**" अर्थात् जो सुख को प्राप्त कराये वह मंगल कहलाता है।

प्रश्न ३. मंगल शब्द के पर्यायवाची नाम क्या–क्या हैं ?

उत्तर– पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ, सुख, पावन, श्रेष्ठ, सुखकर इत्यादि मंगल के पर्यायवाची नाम हैं।

प्रश्न ४. मंगल के सामान्यतया कितने भेद हो सकते हैं ?

उत्तर– मंगल के सामान्यतया एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह अथवा अनेकों भेद हो सकते हैं, जिनेन्द्र देव को नमस्कार करने की अनेकों पद्धतियाँ हो सकती हैं, अतः मंगल के भी अनेकों भेद संभावित हैं।

प्रश्न ५. मंगल के दो भेद कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– मंगल के भाव मंगल व द्रव्य मंगल की अपेक्षा से दो भेद हैं अथवा लौकिक मंगल व पारमार्थिक मंगल की अपेक्षा से भी दो भेद हैं।

प्रश्न ६. लोक मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर– लोक में जिन्हें मंगल स्वरूप माना जाता है उन्हें लोक / लौकिक मंगल कहा जाता है, जैसे– श्रीफल, हल्दी, जल से भरा कलश, कन्या आदि।

प्रश्न ७. लोक / लौकिक मंगल के कितने भेद हैं एवं कौन–कौन से हैं ? नाम बताने की कृपा करें ।

उत्तर– लोक मंगल के तीन भेद हैं– (१) चेतन लोक मंगल (२) अचेतन लोक मंगल (३) मिश्र लोक मंगल।

प्रश्न ८. चेतन, अचेतन व मिश्र लोक मंगल के क्या कोई उदाहरण हैं ? बताने की कृपा करें?

उत्तर–

(१) चेतन लोक मंगल– जो चेतना से युक्त हैं और लोक में मंगल माने जाते हैं, वे चेतन लोक मंगल हैं, जैसे– कन्या, सौभाग्यवती स्त्री, हाथी, घोड़ा इत्यादि।

(२) अचेतन लोक मंगल– जो चेतना से रहित हैं किन्तु, लोक व्यवहार में जिन्हें मंगल रूप माना जाता है वे अचेतन लोक मंगल हैं, जैसे– मंगल कलश, हल्दी, सुपाड़ी, चावल, घी, दूध, जल से भरा घड़ा, दधि, दूर्वा, श्रीफल, दर्पण, निर्धूम अग्नि, दर्पण, छत्र, इत्यादि।

(३) चेतनाचेतन (मिश्र) लोक मंगल– जो चेतन द्रव्य अचेतन पदार्थों से युक्त हों तथा लोक व्यवहार में मंगल स्वरूप माने हों उन्हें चेतनाचेतन (मिश्र) लोक मंगल कहते हैं। जैसे–आभूषणों से सुसज्जित कन्या, सुसज्जित हाथी, घोड़े, मंगलकलश लिये हुए सौभाग्यवती महिलाएँ, पीत या धवल वस्त्र धारण किये हुए पुजारीगण इत्यादि।

प्रश्न ९. लोकोत्तर या पारमार्थिक मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो संसार के दुःखों को नष्ट करने वाले हैं एवं लौकिक सुख एवं आत्मीक सुखों को देने के निमित्त कारण हैं वे लोकोत्तर या पारमार्थिक मंगल कहलाते है ।

प्रश्न १०. पारमार्थिक मंगल के कितने भेद हैं और कौन–कौन से नाम है ? बताने की कृपा करें।

उत्तर– पारमार्थिक मंगल के चार भेद हैं, जो सर्व लोक में प्रसिद्ध हैं– (१) अहँत (२) सिद्ध (३) साधु (४) जिनधर्म।

प्रश्न ११. लोकोत्तर / पारमार्थिक मंगल के चार भेद ही क्यों कहे ? पाँच, या छह क्यों नहीं कहे?

उत्तर– लोकोत्तर (पारमार्थिक) मंगल के चार भेदों में ही सबका अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिए पाँच या छह कहने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि मंगल के एक से लेकर असंख्यातासंख्यात भेद भी संभावित हैं किन्तु, उन सभी का अन्तर्भाव भी इन चार में ही हो जाता है।

प्रश्न १२. मंगल पाठ को अर्थ सहित शुद्ध उच्चारण करके सुनाओ ?

उत्तर– चत्तारि मंगलं– मंगल चार होते हैं।

अरिहंता मंगलं– श्री अरिहंत भगवान मंगल हैं।

सिद्धा मंगलं– श्री सिद्ध भगवान मंगल हैं।

साहू मंगलं– सर्व साधु समूह मंगल स्वरूप हैं।

केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं – श्री अरिहंत परमेष्ठी (केवली भगवान) द्वारा प्रतिपादित धर्म मंगलमय है।

प्रश्न १३. आपने चार मंगल कहते समय श्री आचार्य परमेष्ठी जी एवं श्री उपाध्याय परमेष्ठी जी का कथन क्यों नहीं किया ? क्या वे मंगल स्वरूप नहीं हैं ?

उत्तर– श्री आचार्य परमेष्ठी जी एवं उपाध्याय परमेष्ठी भी मंगल स्वरूप हैं, उनका कथन साहू मंगलं कहने में ही हो जाता है । आचार्य, उपाध्याय, साधू (तीनों ही) साधु/गुरु हैं अतः उनका पृथक् कथन नहीं किया गया है। परमेष्ठी कभी अमंगल स्वरूप नहीं होते, वे सदैव मंगल स्वरूप होते हैं यदि हमारी उनके प्रति समीचीन श्रद्धा, भक्ति है तो। यदि हम ही उनको देखकर अपने परिणाम विकृत करें तो इसमें उनका नहीं हमारे परिणामों का ही दोष हुआ, हम स्वयं ही अपने लिए अमंगलकारी बन गये।

प्रश्न १४. क्या लोक में पंच परमेष्ठी एवं उनके द्वारा प्रतिपादित या आचरित धर्म ही मंगल स्वरूप है ? अन्य नहीं है ?

उत्तर– हाँ ! लोक में पाँच परमेष्ठी व उनके द्वारा प्रतिपादित व आचरित जिन धर्म ही मंगल स्वरूप है क्योंकि, जो स्वयं मंगल स्वरूप होते हैं उन्हीं से मंगल की प्राप्ति व अमंगल का परिहार होता है, अतएव लोक में परमार्थ भूत ये ही मंगल हैं, इनकी प्राप्ति के कारणों को भी मंगल कहा जा सकता है।

प्रश्न १५. लोक मंगलों को परमार्थ भूत मंगल मानना क्या सम्यग्दृष्टि के लिए उचित है ?

उत्तर– लोक मंगल या मंगलाभासों को परमार्थ भूत मंगल मानना मिथ्यात्व की निशानी है, लोक मूढ़ता में लीन व्यक्ति ही धन, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, कुटुम्बीजन, भोगोपभोग की वस्तुएँ, काम / भोग विलास के साधन, असन, वसन, महल, सवारी, आभूषण, वृक्ष आदि को परमार्थ भूत मंगल मानता है, यही लोक मूढ़ता है। सम्यक्दृष्टि इन्हें कभी परम मंगल नहीं मानता।

प्रश्न १६. मंगल के एक, दो, तीन, चार, पांच, छह भेद भी आपने कहे थे, वे किस अपेक्षा से कहे ? समझाने की कृपा करें।

उत्तर– सामान्यतया पाप को नष्ट कर सुख को देने वाला सातिशय पुण्य रूप, परम्परा से मोक्ष का हेतु भूत परिणाम एक मंगल हैं, निश्चय व व्यवहार धर्म के भेद से मंगल के दो भेद हैं तथा सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्र की अपेक्षा मंगल के तीन भेद हैं, अरिहंत, सिद्ध, साधु व जिन धर्म की अपेक्षा चार भेद हैं, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व तीन गुप्तियों या पंच परमेष्ठी

की अपेक्षा मंगल के पाँच भेद हैं। पंच परमेष्ठी एवं जिनधर्म की अपेक्षा मंगल के छह भेद हैं। इत्यादि।

प्रश्न १७. क्या अन्य प्रकार से भी मंगल के आचार्यों ने छह भेद कहे हैं, यदि हाँ तो किस अपेक्षा से?

उत्तर- नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, की अपेक्षा भी छह मंगलों का कथन प्राप्त होता है।

प्रश्न १८. नाम मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर- वीतराग भगवान् के अर्हंत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनेन्द्र सर्वज्ञ या तीर्थंकरों के नाम लेना नाम मंगल हैं क्योंकि, इनके नाम मात्र का स्मरण करने से भी पापों या दुःखों का क्षय एवं सुख का प्रादुर्भाव देखा जाता है।

प्रश्न १९. स्थापना मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिनेन्द्र भगवान के लकड़ी, पाषाण, धातु, रत्नों में स्थापित कृत्रिम या अकृत्रिम जिन बिम्ब (प्रतिमाएं) हैं, वे सब स्थापना मंगल हैं क्योंकि, उन जिनबिम्बों की पूजा, अर्चना, उपासना भी मंगलदायी होती है।

प्रश्न २०. द्रव्य मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर- अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुओं का परित्यक्त या विद्यमान शरीर भी मंगलकारी है, अतः उनका शरीर द्रव्य मंगल है। इस द्रव्य मंगल के और भी अनेक भेद हैं।

प्रश्न २१. क्षेत्र मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर- गुण परिणत आसन क्षेत्र अर्थात् जहाँ पर जिनेन्द्र भगवंतों ने योगासन, वीरासन आदि विविध आसनों से तदनुकूल ध्यानाभ्यासादि अनेक गुण प्राप्त किये हों, ऐसा क्षेत्र, दीक्षा का क्षेत्र, केवल ज्ञानोत्पत्ति का क्षेत्र, निर्वाण क्षेत्र इत्यादि रूप से क्षेत्र मंगल बहुत प्रकार है। जैसे-श्री सम्मेद शिखर जी, श्री गिरनार जी, चंपापुर जी, पावापुर जी, कैलाश पर्वत, श्री द्रोणगिरि, हस्तिनापुर, अहिक्षेत्र, नैनागिरि, कुण्डलपुर, बनारस, अयोध्या, पोदनपुर, सिद्धवर कूट, कुंथलगिरिजी, मांगीतुंगी जी, सोनागिरि जी इत्यादि।

प्रश्न २२. काल मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिस काल में जीव केवलज्ञानादि रूप मंगल पर्याय को ग्रहण करता है या दीक्षा काल, केवलिकाल, निर्वाण काल स्वरूप तिथि, दिवस, नक्षत्र, महीना या पर्व के काल भी मंगल के निमित्त होने से मंगल स्वरूप कहे गये हैं। जैसे-पर्युषण पर्व, आष्टाह्निक पर्व, अष्टमी, चतुर्दशी, दीपावली, श्रुतपंचमी, मोक्ष सप्तमी, वीर शासन जयंती इत्यादि।

प्रश्न २३. भाव मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर– वर्तमान काल में मंगल पर्यायों से परिणत जो शुद्ध जीव द्रव्य (पंच परमेष्ठियों की आत्माएँ) हैं वे भाव मंगल है अथवा सातिशय पुण्य के कारण भूत परिणाम या मोक्ष के साक्षात् हेतुभूत भाव भी भाव मंगल हैं, जैसे–पूजा, भक्ति, ध्यान के परिणाम।

प्रश्न २४. मंगलाचरण किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो आचरण पापों को नष्ट कर परम सुख को देने वाला होता है, उसे मंगलाचरण कहते हैं। अथवा परम, इष्ट, देवता, परमात्मा को नमस्कार करने रूप त्रियोग की क्रिया / मंगल आचरण ही मंगलाचरण है।

प्रश्न २५. मंगलाचरण क्यों किया जाता है ?

उत्तर– नास्तिकता का परिहार करने के लिए, शिष्टाचार का पालन करने के लिए, सातिशय पुण्य की प्राप्ति के लिए एवं कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए सज्जन/ साधु पुरुषों द्वारा ग्रंथादि के प्रारंभ में इष्ट नमस्कार रूप मंगलाचरण किया जाता है।

प्रश्न २६. मंगलाचरण के कितने भेद हैं और कौन–कौन से नाम बताएं ?

उत्तर– मंगलाचरण के मुख्य रूप से दो भेद हैं– (१) निबद्ध मंगलाचरण और (२) अनिबद्ध मंगलाचरण अथवा दो भेद इस प्रकार भी हैं, (१) मुख्य मंगल, (२) अमुख्य मंगल।

प्रश्न २७. निबद्ध मंगलाचरण किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो ग्रंथ के आदि में ग्रंथकार के द्वारा, इष्ट देवता को नमस्कार करके निबद्ध कर दिया जाता है अर्थात् श्लोक, गाथा या अन्य छंद रूप में निबद्ध करके किया जाता है, वह निबद्ध (लिखित / रचित) मंगलाचरण है।

प्रश्न २८. अनिबद्ध मंगलाचरण किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो ग्रंथ के आदि में ग्रन्थकार द्वारा इष्ट देवता को मात्र भाव नमस्कार (अलिपिबद्ध) किया जाता है अर्थात् शास्त्र के लिखते या पढ़ते समय मन, वचन, काय से (बिना – श्लोकादि बोले या लिखे) नमस्कार करें तो वह अनिबद्ध मंगलाचरण कहलाता है।

प्रश्न २९. मुख्य मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर– ज्ञानियों, साधु पुरुषों द्वारा शास्त्र के आदि, मध्य व अंत में आने वाले सब विघ्नों को नष्ट करने के लिए एवं सर्व सुखों को प्राप्त करने के लिए जिनेन्द्र भगवान या पंच परमेष्ठी या नवदेवताओं को किया गया नमस्कार मुख्य मंगल कहलाता है।

प्रश्न ३०. अमुख्य मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर– लोक व्यवहार में माने गये मंगल–पीली सरसों, हल्दी, सुपाड़ी, पूर्ण कलश, छत्र, श्वेत वर्ण,

दर्पण, बन्दनमाला, मंगलसूत्र, उत्तम अश्व, श्रेष्ठ गज, पंखा, रजत, ताम्र, स्वर्ण पात्र जलादि से परिपूर्ण, इत्यादि अमुख्य मंगल हैं।

प्रश्न ३१. ग्रन्थकार ग्रन्थ के प्रारम्भ में कितनी बार मंगलाचरण करते हैं ?

उत्तर– ग्रंथकार के द्वारा ग्रंथ के प्रारम्भ में पढ़ते समय या लिखते समय तीन बार मंगलाचरण किया जाता है, (१) आदि मंगल (२) मध्य मंगल (३) अंत मंगल।

प्रश्न ३२. तीन बार मंगलाचरण करने का क्या फल है?

उत्तर– शास्त्र के आदि में मंगलाचरण के लिखने – पढ़ने से शिष्य लोग शास्त्र के पारगामी होते हैं, मध्य में मंगल करने पर निर्विघ्न विद्या की प्राप्ति होती है और अंत में मंगलाचरण करने पर विद्या के फल की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ३३. जिनेन्द्र (तीर्थंकर) भगवान के समवशरण में विद्यमान आठ मंगल द्रव्य कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– झारी, कलश, पंखा, ध्वज, स्वास्तिक, छत्र, दर्पण, चंवर ये आठ मंगल द्रव्य तीर्थंकर भगवान के समवशरण में प्रत्येक १०८, १०८ की संख्या में विद्यमान रहते हैं।

प्रश्न ३४. उत्तम किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो लोक में सर्वोत्कृष्ट (सर्व श्रेष्ठ) पदार्थ हैं, उन्हें उत्तम कहते हैं।

प्रश्न ३५. उत्तम के कितने भेद हैं ?

उत्तर– सामान्यतया लोक में पाये जाने वाले उत्तमों के दो भेद किये जा सकते हैं– (१) लौकिक उत्तम पदार्थ (२) पारमार्थभूत उत्तम पदार्थ।

प्रश्न ३६. लौकिक उत्तम किसे कहते हैं ?

उत्तर– लोक व्यवहार में जिन्हें श्रेष्ठ माना जाता है, उन्हें लौकिक उत्तम कहते हैं, जैसे–केशर, चंदन, पुष्प, स्वर्ण, रत्न, कामधेनु, चिंतामणि रत्न, दिव्यदेहयष्टि, चन्द्र, असि, धनुष, सूर्य, चन्द्रमा, दिव्य भोगोपभोग के साधन इत्यादि।

प्रश्न ३७. लोकोत्तर या पारमार्थिक उत्तम किसे कहते हैं ?

उत्तर– परम अर्थ को सिद्ध करने में कारणभूत, पापों का क्षय करने में कारण –भूत एवं शाश्वत / सच्चे सुखों के आधारभूत पदार्थ/परम रत्न ही लोकोत्तर या पारमार्थिक उत्तम हैं।

प्रश्न ३८. लोक में विद्यमान लोकोत्तर / पारमार्थिक उत्तम के कितने भेद हैं ? एवं कौन–कौन से हैं ? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– लोक में विद्यमान लोकोत्तर (पारमार्थिक) उत्तम के चार भेद हैं–(१) श्री अरिहंत जी (२) श्री

सिद्ध परमेष्ठी जी (३) सर्व साधु (४) श्री केवली (सर्वज्ञ) जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनधर्म।

प्रश्न ३९. चारों उत्तमों को अर्थ सहित शुद्ध उच्चारण करके सुनाओ

उत्तर– **चत्तारि लोगुत्तमा** – लोक में उत्तम चार होते हैं,

अरिहंता लोगुत्तमा – श्री अरिहंत परमेष्ठी जी लोक में उत्तम हैं,

सिद्ध लोगुत्तमा – श्री सिद्ध परमेष्ठी जी लोक में उत्तम हैं,

साहू लोगुत्तमा – सर्व साधु भगवन्त लोक में उत्तम हैं,

केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा – श्री केवली जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित जिन धर्म लोक में उत्तम स्वरूप हैं।

प्रश्न ४०. चार उत्तम कहते समय श्री आचार्य परमेष्ठी जी एवं श्री उपाध्याय परमेष्ठी जी का नामोल्लेख क्यों नहीं किया ?

उत्तर– श्री आचार्य परमेष्ठी जी एवं श्री उपाध्याय परमेष्ठी जी का समावेश साहू लोगुत्तमा में ही हो जाता है, इसलिए श्री आचार्य जी एवं श्री उपाध्याय परमेष्ठी जी का नामोल्लेख पृथक्-पृथक् नहीं किया गया है।

प्रश्न ४१. शरण किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिनका सहारा लेने से हम अपने आपको सुरक्षित मानते हैं, उन आश्रयभूत स्थानों को शरण कहते हैं।

प्रश्न ४२. शरण के कितने व कौन-कौन से भेद हैं ?

उत्तर– शरण के सामान्यतया दो भेद होते हैं- (१) लौकिक शरण (२) पारमार्थिक शरण।

प्रश्न ४३. लौकिक शरण किसे कहते हैं ?

उत्तर– लोक व्यवहार में जिन्हें अपना सहारा माना जाता है अथवा जिनके आश्रय से अपने आप को सुरक्षित रूप में अनुभव किया जाता है, वे लौकिक शरण कहलाती हैं।

प्रश्न ४४. परमार्थभूत शरण की परिभाषा क्या है ?

उत्तर– जिनका आश्रय लेने से हमारी आत्मा की पापों से रक्षा हो एवं परमार्थ के (परम अर्थ को सिद्ध करने वाले) मार्ग में गमन कर सकें, सच्चे एवं शाश्वत सुख को प्राप्त करने की प्रेरणा प्राप्त हो उन्हें पारमार्थिक (लोकोत्तर) शरण कहते हैं।

प्रश्न ४५. परमार्थ भूत शरण के कितने भेद हैं और कौन-कौन से ? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– परमार्थ भूत शरण के चार भेद हैं– (१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) साधु ४) जिनधर्म अथवा इस प्रकार भी कह सकते हैं –

देव, धर्म गुरु शरण जगत में और नहिं कोई।

भ्रम से फिरे भटकता चेतन यूं ही उमर खोई।।

प्रश्न ४६. परमार्थभूत शरण का पाठ अर्थ सहित बताने की कृपा करें ?

उत्तर– **चत्तारि सरणं पव्वज्जामि**– मैं चार की शरण में जाता हूँ, **अरिहंते सरणं पव्वज्जामि**– मैं अरिहंतों की शरण में जाता हूँ, **सिद्धे सरणं पव्वज्जामि**– मैं सिद्धों की शरण में जाता हूँ, **साहू सरणं पव्वज्जामि**– मैं सर्व साधुओं की शरण में जाता हूँ, **केवली पण्णतं धम्मं सरणं पव्वज्जामि** – मैं केवली प्रणीत जिन धर्म की शरण में जाता हूँ।

प्रश्न ४७. शरणाभास किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो वास्तव में शरण नहीं होती किन्तु, लोक व्यवहार में जिन्हें शरण कह दिया जाता है एवं उनकी शरण में जाने के पूर्व ऐसा लगता है कि इनकी शरण में पहुँचकर मैं सुरक्षित एवं पूर्ण सुखी हो जाऊँगा किन्तु, वैसा होता नहीं। ऐसी लौकिक शरण ही शरणाभास हैं।

प्रश्न ४८. शरणाभास कौन–कौन हैं ? बताने की कृपा करें?

उत्तर– माता–पिता, भाई–बहिन, पुत्री–पुत्र आदि कुटुम्बी जन, मामा–फूफा, मौसा, सास–ससुर, आदि नाते रिश्तेदार, मित्र, राजा, पुलिस, शासन–प्रशासन के अधिकारी आदि, मणि, मंत्र, तंत्र, औषधि, देव समूह, चल–अचल सम्पत्ति, वैभव, नौकर, चाकर आदि अधीनस्थ व्यक्ति ये सब शरणाभास हैं, ये सच्ची शरण नहीं है, मिथ्यादृष्टि जीव ही इनकी शरण लेता है, सम्यक् दृष्टि जीव तो पंचपरमेष्ठी जिनधर्म व आत्मा की ही शरण लेता है।

प्रश्न ४९. मंगलोत्तमशरण के तीन छंद क्या हैं एवं इसमें कितने अक्षर, मात्रायें, स्वर व व्यंजन है ?

उत्तर– यह एक शाश्वत मंत्र है, इसमें **अक्षर** – १२७ (एक सौ सत्ताईस), **मात्राऐं** – २१३ (दो सौ तेरह), **स्वर** – १२४ (एक सौ चौबीस) एवं **व्यंजन** – १२४ (एक सौ चौबीस) विद्यमान हैं।

नोट– स्वरों की गिनती करते समय ह्रस्व "अ" वर्ण को छोड़ दिया है क्योंकि, प्राकृत मंत्र शास्त्रों की अपेक्षा से "अ" वर्ण को स्वरों में नहीं गिना जाता है।

प्रश्न ४९. इस पाठ को पढ़कर हमें क्या शिक्षा मिलती है एवं शरणाभासों या मिथ्याशरणों को छोडने का क्या उपाय है ?

उत्तर– उक्त पाठ को पढ़कर हमें शिक्षा मिलती है कि लोक में यथार्थ रूप से चार ही मंगल व उत्तम हैं, इन चारों (अरिहंत, सिद्ध, साधु व जिन धर्म) की शरण में हमें जाना चाहिए। मिथ्याशरण

या शरणाभास से छूटने का उपाय है बारह भावनाओं, सप्त तत्व एवं पंच परमेष्ठी के गुणों का चिंतवन करना इत्यादि। अशरण भावना का निरन्तर सम्यक् चिन्तन भी हमें मिथ्याशरण (शरणाभासों) से मुक्त करा सकता है।

******

भारभूत कौन

को अत्थि भारभूदो, जिणसुद मुणि धम्मणिंदगो णिच्चं ।
हिंसाइ-पावजुत्तो, तिव्वमोह-संग-संलीणो ।। १०४ ।।

भारभूत कौन है ? - नित्य जिन, श्रुत मुनि तथा धर्म का निंदक, हिंसादि पांच पापों से युक्त, तीव्रमोह और परिग्रह में लीन व्यक्ति भारभूत है।

धम्मसुत्तं (धर्मसूत्र) - १०४
(आ. वसुनंदी मुनि)

सारभूत कौन

को अत्थि सारभूदो, जिणगुरुवासगो धम्मरक्खगो य ।
जिणसासणस्स थंभो, वच्छल्ल-संजम-चागजुदो ।। १०५ ।।

सारभूत कौन है ? जिनेन्द्र प्रभु और गुरु का उपासक, धर्म का संरक्षक, जिनशासन का स्तम्भ, वात्सल्य, संयम और त्याग से युक्त व्यक्ति सारभूत है ।

धम्मसुत्तं (धर्मसूत्र) - १०५
(आ. वसुनंदी मुनि)

अध्याय–८

तीर्थंकर

प्रश्न १. तीर्थंकर किसे कहते हैं?

उत्तर– **"तीर्थं करोति इति तीर्थंकर" अर्थात** जो समीचीन धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, दो, तीन, पाँच कल्याणकों से युक्त होते हैं, तीन लोक के प्राणियों द्वारा पूज्य है वे महापुरुष तीर्थंकर कहलाते हैं। **अथवा**–तीर्थंकर प्रकृति नाम कर्म के उदय से जिन्हें समवशरणादि बहिरंग लक्ष्मी एवं अनन्त चतुष्टय रूप अंतरंग लक्ष्मी प्राप्त हुई है, उन्हें तीर्थंकर कहते हैं।

प्रश्न २. समीचीन धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर– जो संसार के प्राणियों को संसार के दुःखों से निकालकर उत्तम सुख में स्थापित करे उसे समीचीन धर्म कहते हैं अथवा वस्तु के स्वभाव को समीचीन धर्म कहते हैं।

प्रश्न ३. आपने समीचीन शब्द का प्रयोग क्यों किया ? क्या धर्म मिथ्या भी होता है?

उत्तर– हाँ ! वर्तमान काल में मिथ्या मत/धर्मों का विशेष बोलबाला है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मान्यता को धर्म की संज्ञा देता है। अतएव वर्तमान में ३६३ मिथ्यामत विद्यमान हैं। इसलिए मिथ्या धर्म / धर्माभास का निराकरण करने के लिए समीचीन शब्द का प्रयोग किया है।

प्रश्न ४. मिथ्या धर्म किसे कहते हैं? समझाने की कृपा करें।

उत्तर– जो धर्म जैसा प्रतिभासित होता है किन्तु धर्म नहीं होता उसे ही मिथ्या धर्म कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, कषायोद्रेक में की गई रागद्वेष युक्त इन्द्रियों के विषयों की प्रवृत्ति तथा मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम भी अधर्म है अथवा वस्तु के अंश को ही सर्वस्व मान लेना मिथ्या धर्म है।

प्रश्न ५. समीचीन धर्म की क्या–क्या विशेषताएं हैं ? समझाने की कृपा करें।

उत्तर– जो धर्म प्राणी–मात्र के लिए सुखकर हो अथवा जो व्यवहार आप दूसरों से चाहते हैं वही व्यवहार दूसरों के लिए करना धर्म है अथवा स्वभाव की प्राप्ति में कारणभूत अवस्था को धर्म कहते हैं। अंहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अथवा उत्तमक्षमा, उत्तम–मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआंकिचन, उत्तम ब्रह्मचर्यादि समीचीन धर्म के लक्षण या विशेषताएं हैं इनसे ही समीचीन धर्म की पहचान होती है।

प्रश्न ६. कल्याणक किसे कहते हैं एवं कितने होते हैं? नाम बताओ।

उत्तर– तीर्थंकर भगवान के गर्भ जन्मादि के महोत्सवों को कल्याणक कहते हैं। ये कल्याणक पाँच होते हैं–

१. गर्भ कल्याणक

२. जन्म कल्याणक

३. दीक्षा कल्याणक / तप कल्याणक

४. ज्ञान कल्याणक

५. निर्वाण कल्याणक / मोक्ष कल्याणक

प्रश्न ७. तीर्थंकरों के गर्भादि महोत्सवों को कल्याणक क्यों कहा जाता है?

उत्तर– तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण सम्बन्धी महोत्सव अत्यन्त आनन्द के साथ देवों के समूह द्वारा, मनुष्य व तिर्यञ्चों द्वारा मनाये जाते हैं, जिन महोत्सवों के निमित्त से संसारी प्राणी अपना कल्याण करने में समर्थ होते हैं अथवा ये कल्याण के हेतु होने से ही कल्याणक कहे जाते हैं।

प्रश्न ८. क्या सभी तीर्थंकरों के पांचों कल्याणक होते हैं अथवा कम ज्यादा भी होते हैं? समझाने की कपा करें।

उत्तर– पाँच भरत, पाँच ऐरावत क्षेत्रों में होने वाले सभी तीर्थंकरों के पाँच–पाँच कल्याणक ही होते हैं, विदेह क्षेत्रों में होने वाले तीर्थंकरों के पांच कल्याणक भी होते हैं, कदाचित तीन व दो कल्याणक भी होते हैं।

प्रश्न ९. विदेह क्षेत्र में ऐसे कौन से तीर्थंकर होते हैं जिनके तीन या दो कल्याण भी हो सकते हैं?

उत्तर– केवली या श्रुत केवली का पाद मूल प्राप्त करके तद्भव मोक्ष गामी, किसी गृहस्थ ने श्रावक अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया है, उनके दीक्षा कल्याणक, ज्ञान कल्याणक, मोक्ष कल्याणक ऐसे तीन कल्याणक होते हैं तथा जिन्होंने मुनि दीक्षा लेने के बाद तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया है और उसी भव में तीर्थंकर प्रकृति का उदय आ जाए ऐसे तद्भव मोक्षगामी जीव के (तीर्थंकर) केवलज्ञान कल्याणक व मोक्ष कल्याणक ये दो ही कल्याणक होते हैं।

प्रश्न १०. तीर्थंकरों की पहचान कैसे होती है?

उत्तर– तीर्थंकर की पहचान चिह्नों से होती है। प्रत्येक तीर्थंकर का चिह्न होता है जिसे देखकर उन तीर्थंकरों की मूर्ति के बारे में ज्ञान किया जा सकता है कि अमुक तीर्थंकर की प्रतिमा कौन सी है।

प्रश्न ११. तीर्थंकरों की प्रतिमा में चिह्न बनाने का कोई आधार है या इच्छानुसार यों ही बना दिये जाते हैं?

उत्तर- जिस तीर्थंकर का जो चिह्न होता है, वही चिह्न उस प्रतिमा में स्थापित किया जाता है, स्वेच्छानुसार चिह्न नहीं रखे जाते हैं।

प्रश्न १२. तीर्थंकर के चिह्न कौन रखता है?

उत्तर- तीर्थंकरों के चिह्न कोई नहीं रखता अपितु, यह उनके शरीर में विधमान १००८ (एक हजार आठ) शुभ लक्षणों में से एक शुभ लक्षण है। उनके शरीर में १०८ शुभ लक्षण व ९०० व्यञ्जन होते हैं। उन १०८ शुभ लक्षणों में ही यह एक शुभ लक्षण है।

प्रश्न १३. जब तीर्थंकर के शरीर में १०८ शुभ लक्षण होते हैं, फिर उनमें से एक ही चिह्न कैसे घोषित किया जाता है?

उत्तर- तीर्थंकर भगवान के शरीर में तिल-मस्सादि ९०० व्यञ्जन, शंख, चक्र, पद्म, गदा, सूर्य, चन्द्रमा, कलश, मीन, अश्व, गज, वृषभादि १०८ शुभ लक्षण होते हैं। इन शुभ लक्षणों में से दाहिने पैर के अंगूठे के निचले भाग में जो लक्षण होता है, वही उनका चिन्ह घोषित कर दिया जाता है।

प्रश्न १४. चिह्न को घोषित कौन करता है और चिह्न कब घोषित किये जाते हैं?

उत्तर- सौधर्म इन्द्र तीर्थंकर बालक का जब सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर अभिषेक करते हैं उसी समय दाहिने पैर के अंगूठे पर विद्यमान चिह्न को घोषित कर देते हैं।

प्रश्न १५. कुछ लोंगों का कहना है कि "तीर्थंकर पूर्व अवस्था में जिस पर्याय में थे, उनका वही चिह्न रख दिया जाता है" क्या यह कथन सत्य है ?

उत्तर- नहीं ! चिह्न तीर्थकरों के शरीर में विद्यमान १००८ शुभलक्षणों में से एक लक्षण है, पूर्व पर्याय से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कदाचित् ऐसा मान लिया जाए कि महावीर स्वामी का चिह्न सिंह, पार्श्वनाथ का चिह्न सर्प आदि हैं तो सुपार्श्व नाथ, चन्दाप्रभु, धर्मनाथ, मल्लिनाथादि तीर्थंकर अचेतन सिद्ध हो जाएँगे क्योंकि, उनके चिन्ह क्रमशः, स्वस्तिक, चन्द्रमा, वज्रदण्ड व कलश हैं जो कि अचेतन हैं। अतएव उक्त कथन असत्य है।

प्रश्न १६. तीर्थंकर कितने होते हैं? ये कब से हैं और कब तक रहेंगे?

उत्तर- पाँच भरत क्षेत्र एवं पांच ऐरावत क्षेत्रों में प्रत्येक दुषमा-सुषमा नाम के चौथे काल में २४ तीर्थंकर होते हैं। विदेह क्षेत्र में सदैव तीर्थकर होते हैं। अभी तक अनन्त चौबीसी तीर्थंकर हो चुके हैं और आगे अनन्त काल तक होते रहेंगे।

प्रश्न १७. विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर सदैव क्यों बने रहते हैं अथवा सदा क्यों होते रहते हैं ?

उत्तर– विदेह क्षेत्र में सदैव दुषमा–सुषमा नाम का चौथा काल विद्यमान रहता है अतएव वहाँ सदैव तीर्थंकरादि महापुरुष होते रहते हैं।

प्रश्न १८. एक काल में अधिक से अधिक कितने तीर्थंकर हो सकते हैं और कैसे? समझाने की कृपा करें।

उत्तर– एक काल में एक साथ अधिक से अधिक १७० तीर्थंकर हो सकते हैं। पाँच भरत क्षेत्रों में पाँच, पाँच ऐरावत क्षेत्रों में पाँच एवं पाँच विदेह क्षेत्रों में १६० कुल मिलाकर इस प्रकार १७० तीर्थंकर हुए।

प्रश्न १९. आपने पाँच भरत क्षेत्रों में पाँच तीर्थंकर और पाँच ऐरावत क्षेत्रों में पाँच ही तीर्थंकर क्यों कहे? भरत व ऐरावत क्षेत्रों में तो २४–२४ तीर्थंकर ही होते हैं अतः २४० तीर्थंकर कहना चाहिए?

उत्तर– एक काल में (पूरे दुषमा–सुषमा नाम के चौथे काल में) २४ तीर्थंकर होते हैं। एक समय में एक ही तीर्थंकर होते है क्योंकि, तीर्थंकर का तीर्थंकर से मिलन नहीं होता। अतः एक समय में एक ही तीर्थंकर होने से पाँच भरत क्षेत्रों में ५ तथा पाँच ऐरावत क्षेत्रों में ५ ही तीर्थंकर होते हैं।

प्रश्न २०. एक समय में एक ही तीर्थंकर होते हैं तो फिर विदेह क्षेत्र में भी ५ तीर्थंकर कंहने चाहिए, आपनें १६० तीर्थंकर क्यों कहे? :

उत्तर– आपका कहना तब सत्य हो सकता था जबकि, कुल विदेह क्षेत्र ५ ही होते किन्तु, प्रत्येक विदेह क्षेत्र के ३२–३२ उपविदेह होते हैं। अतएव पाँच विदेह क्षेत्रों के १६० (एक सौ साठ) उपविदेह हुए। प्रत्येक उपविदेह में एक–एक तीर्थंकर होने से सभी विदेह क्षेत्र में १६० तीर्थंकर हुए।

प्रश्न २१. क्या तीर्थंकर भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र व विदेह क्षेत्र में ही होते हैं? यदि हाँ तो क्यों? अन्यत्र क्यों नहीं होते?

उत्तर– हाँ! तीर्थंकरादि महापुरुष ५ (पाँच) भरत क्षेत्रों में, ५(पाँच) ऐरावत क्षेत्रों में, ५ (पाँच) विदेह क्षेत्रों में ही होते हैं क्योंकि, ये १५ (पन्द्रह) ही कर्मभूमियाँ होती हैं व ३० (तीस) भोगभूमियाँ होती हैं, इसलिए वहाँ महापुरुषों का जन्म नहीं होता।

प्रश्न २२. तीर्थंकरादि महापुरुष से आपका क्या आशय है?

उत्तर– तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव, नारायण, प्रतिनारायण, बलदेव, कुलकर आदि षट्कर्मो में निरत होने वाले तथा कर्मों का क्षय कर मोक्ष जाने वाले जीव महापुरुष कहलाते हैं।

प्रश्न २३. भोगभूमियाँ कितनी होती हैं और कौन कौन सीं ?

उत्तर– भोगभूमियाँ तीस होती हैं। ६ (छः) जम्बूद्वीप में, १२ (बारह) धातकीखण्ड द्वीप में व १२

(बारह) पुष्कारार्द्ध द्वीप में इस प्रकार ३० (तीस) भोगभूमियाँ पाई जाती हैं।

प्रश्न २४. क्या इसके आगे द्वीप नहीं होते? यदि हाँ तो उनका नाम क्यों नहीं लिया?

उत्तर- द्वीप तो असंख्यात होते हैं किन्तु, ढाई द्वीप (जम्बूद्वीप + धातकीखण्ड + पुष्करार्द्ध द्वीप) के आगे मनुष्य नहीं होते। (लोक सम्बन्धी विशेष कथन आगे के भागों में किया है, वहाँ से देखें अथवा अपने गुरु जी से पूँछ लें)

प्रश्न २५. भोगभूमि किसे कहते हैं? उन जम्बूद्वीप सम्बन्धी भोगभूमियों के नाम क्या है?

उत्तर- जहाँ दस प्रकार के कल्पवृक्षों से प्राप्त वस्तुओं का उत्तमोत्तम भोग किया जाए, जहाँ देवपूजादि परमात्मभूत षट्कर्म एवं असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, कलादि लौकिक षट्कर्म नहीं होते, उस स्थान को भोगभूमि कहते हैं। जम्बूद्वीप में देवकुरु-उत्तरकुरु **उत्तम**, हरि क्षेत्र, रम्यक क्षेत्र **मध्यम**, हैमवत-हैरण्यवत क्षेत्र में **जघन्य भोगभूमियाँ** पाई जाती हैं। इन्हीं नामों की धारक भोगभूमियाँ धातकी खण्ड व पुष्करार्द्ध द्वीप में हैं।

प्रश्न २६. उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमियों में क्या कुछ विशेषता है? यदि हाँ तो कौन सी विशेषताएं हैं?

उत्तर- नाम से ही स्पष्ट हो रहा है " उत्तम, मध्यम, जघन्य " ।

भोगभूमि	आयु	शरीर की अवगाहना	शरीर का वर्ण	भोजन का प्रमाण	सम्यक्त्व प्राप्ति
१.उत्तम	३ पल्य	३ कोश	बालसूर्यसम	तीन दिन के अंतराल से बेर के बराबर	२१ दिन में
२.मध्यम	२ पल्य	२ कोश	चन्द्रसमश्वेत	२ दिन के अंतराल से, बहेड़ा के बराबर	३५ दिनों में
३.जघन्य	१ पल्यं	१ कोश	प्रियंगु सम श्याम वर्ण	१ दिन के अतंराल से आँबला के बराबर	४९ दिन में

नोट : विस्तार से अन्यत्र देखें अथवा अपने गुरु जी से पूंछ लें।

प्रश्न २७. विद्यमान बीस तीर्थंकर भी सुनने में आते हैं। ये बीस तीर्थंकर कहाँ होते हैं? उनका क्रम क्या है? समझाने की कृपा करें।

उत्तर- विद्यमान का अर्थ है मौजूदगी। अभी वर्तमान काल में विदेह क्षेत्र में २० (बीस) तीर्थंकर विद्यमान हैं। ऐसा कोई समय नहीं होता जब संख्या २० से कम हो जाए। अधिकतम तीर्थंकर विदेह क्षेत्र में १६० होते हैं। जम्बूद्वीप के मध्य में विदेह क्षेत्र है उसके मध्य में सुदर्शन नामक सुमेरु पर्वत है जिससे विदेह क्षेत्र के पूर्व विदेह व पश्चिम विदेह ऐसे दो खण्ड हो जाते हैं। निषध व नील पर्वतों पर विद्यमान तिगिच्छ व केसरी तालाबों से पूर्व की ओर सीता व पश्चिम की ओर सीतोदा नदी के बहने से पूर्व विदेह के भी २ खण्ड व पश्चिम विदेह के भी २ खण्ड हो

जाते हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र के ४ खण्ड हुए। प्रत्येक खण्ड में ८-८ वक्षार गिरि होने से प्रत्येक खण्ड के ८-८ खण्ड हुए। इन ८ क्षेत्रों में कम से कम एक तीर्थंकर नियम से होते हैं । पूर्व विदेह क्षेत्र के दक्षिण दिशा के ८ खण्डों में से किसी एक खण्ड में श्री सीमंधर जी नामक तीर्थंकर, पूर्व विदेह क्षेत्र के उत्तर दिशा की ओर ८ खण्डों में से किसी एक खण्ड में श्री युगमंधर जी नाम के तीर्थंकर व पश्चिम विदेह के दक्षिण दिशा की ओर ८ खण्डों में से किसी एक खण्ड में श्री बाहु जी नाम के तीर्थंकर एवं पश्चिम विदेह के उत्तर दिशा सम्बन्धी बने ८ खण्डों में से किसी एक खण्ड में श्री सुबाहु जी नाम के तीर्थंकर होते हैं। इसके अतिरिक्त जम्बूद्वीप के २८ उप विदेह क्षेत्रों के २८ तीर्थंकर अन्य अन्य नाम के धारक होते हैं। जम्बूद्वीप के समान ही किन्तु दुगुनी-दुगुनी रचना धातकीखण्ड व पुष्करार्द्ध द्वीप में है। अतः इसी प्रकार उन क्षेत्रों में ८-८ तीर्थंकर नियत नाम वाले व ५६-५६ तीर्थंकर अन्य नाम वाले होते हैं। (ढाई द्वीप के बारे में विस्तार से अन्य भागों में देख लें अथवा अपने गुरु जी से चित्र बनवा कर समझ लें। यहाँ विस्तार के भय से नहीं लिख रहे हैं।)

प्रश्न २८. भरतादि क्षेत्रों व जम्बूद्वीपादि द्वीपों में एक साथ अधिक से अधिक व एक साथ कम से कम कितने तीर्थंकर हो सकते हैं?

उत्तर- जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कम से कम ० अधिक से अधिक १

जम्बूद्वीप के ऐरावत में कम से कम ० अधिक से अधिक १

जम्बूद्वीप के विदेह में कम से कम ४ अधिक से अधिक ३२

जम्बूद्वीप के सभी क्षेत्रों में कम से कम ४ अधिक से अधिक ३४

धातकी खण्ड द्वीप में भी पूर्व धातकी खण्ड व पश्चिम धातकीखण्ड एवं पुष्कारार्द्ध द्वीप के पूर्व पुष्करार्द्ध द्वीप व पश्चिम पुष्करार्द्ध द्वीप में भी जम्बूद्वीप के समान ही व्यवस्था हैं। दोनों (पूर्व व पश्चिम) का एक साथ कथन करने पर ४ उक्त संख्या को दुगुनी कर देना चाहिए। जहाँ शून्य (०) है वहाँ (०) ही होगा तथा धातकी खण्ड व पुष्करार्द्ध दोनों द्वीपों का एक साथ कथन करने पर उक्त संख्या को (चार) ४ से गुणा कर देना चाहिए। जैसे-धातकीखण्ड के दोनों भरत क्षेत्रों में कम से कम तीर्थंकर की संख्या-० व अधिक से अधिक तीर्थंकरों की संख्या-२ है। इसी पूरे धातकीखण्ड द्वीप में कम से कम ८ तीर्थंकर व अधिक से अधिक-६८ तीर्थंकर, पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व व पश्चिम दोनों भागों में कम से कम तीर्थंकर ८ होते हैं एवं अधिक से अधिक ६८ होते हैं। (नोट-विशेष कथन आप अपने गुरु जी से पूँछें, वे विस्तार से आपको समझा देंगे।

प्रश्न २९. कभी-कभी तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकर भी सुनने में आते हैं। वे तीस चौबीसी कौन सी हैं व सात सौ बीस तीर्थंकर कौन से हैं ? समझाने की कृपा करें।

उत्तर– पांच भरत क्षेत्र व पांच ऐरावत क्षेत्र इस तरह दस क्षेत्र होते हैं। इन दस क्षेत्रों के वर्तमान कालीन, भूत कालीन, भविष्यत कालीन तीर्थंकर होने से तीस चौबीसी हो गयी हैं। एक काल सम्बन्धी एक क्षेत्र में २४ (चौबीस) तीर्थंकर हुए तो त्रिकाल सम्बन्धी दस क्षेत्रों में तीस चौबीसी के सात सौ बीस (७२०) तीर्थंकर हुए। **जैसे**–जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान कालीन (श्री ऋषभदेवादि जी) २४ तीर्थंकर, जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी भूतकालीन (निकटवर्तीभूतकालीन) २४ तीर्थंकर (श्री निर्वाण जी आदि) एवं जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी भविष्यतकालीन (निकटवर्ती भविष्य कालीन) चौबीस तीर्थंकर (श्री महापद्म जी आदि) इस प्रकार एक क्षेत्र सम्बन्धी तीन चौबीसी हुईं । इसी प्रकार दस क्षेत्र सम्बन्धी तीस चौबीसी होंगी।

प्रश्न ३०. वर्तमान कालीन तीर्थंकरों में किन–किन तीर्थंकरों का वर्ण कौन सा था?

उत्तर –

तीर्थंकर	शरीर का वर्ण
श्री पद्मप्रभ जी, श्री वासुपूज्य जी	लाल
श्री सुपार्श्वनाथ जी, श्री पार्श्वनाथ जी	हरा या गहरा नीला (मयूर कण्ठ)
श्री चन्द्रप्रभ जी, श्री पुष्पदंत जी	धवलआभायुक्त
श्री मुनिसुव्रत जी, श्री नेमिनाथ जी	श्याम आभायुक्त
शेष षोडश तीर्थंकर के शरीर का वर्ण	तपाये हुए स्वर्ण के समान पीत

प्रश्न ३१. एक से अधिक नाम वाले तीर्थंकर कितने हुए?

उत्तर– एक से अधिक नाम वाले तीर्थंकर ७ हुए–

श्री आदिनाथ जी – ऋषभदेव जी
श्री पुष्पदंत जी – सुविधिनाथ जी
श्री श्रेयांसनाथ जी – श्रेयोनाथ जी
श्री अनंतनाथ जी – अनन्तजित जी
श्री मुनिसुव्रतनाथ जी – सुव्रतनाथ जी
श्री नेमिनाथ जी – श्री अरिष्टनेमि जी
श्री महावीर स्वामी जी – वर्द्धमान, सन्मति, वीर, अतिवीर

प्रश्न ३२. किन तीर्थंकर का समवशरण विपुलाचल पर्वत पर नहीं गया व किन तीर्थंकर के पांचों कल्याणक एक ही स्थान पर हुए?

उत्तर– श्री वासुपूज्य भगवान का समवशरण विपुलाचल पर्वत पर नहीं गया व श्री वासुपूज्य भगवान के पांचों कल्याणक एक ही स्थान "चम्पापुर (मंदारगिरि)" में हुए।

प्रश्न ३३. वर्तमान कालीन चौबीसी में बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर कितने हुए व कौन–कौन से? नाम बताएं?

उत्तर– वर्तमान कालीन चौबीसी में ५ तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी हुए उनके नाम निम्नांकित हैं–

१. श्री वासुपूज्य जी
२. श्री मल्लिनाथ जी
३. श्री नेमिनाथ जी
४. श्री पार्श्वनाथ जी
५. श्री महावीर स्वामी जी

प्रश्न ३४. वर्तमान कालीन २४ तीर्थंकरों की जन्म नगरियाँ, निर्वाण नगरियाँ एवं निर्वाण कूट कौन–कौन से हैं ?

उत्तर –

क्रं.	तीर्थंकर	जन्मभूमि	निमार्ण स्थली	निवार्ण कुट
१	श्री आदिनाथ जी	अयोध्या/विनीता / साकेत	कैलाश पर्वत	कैलाश पर्वत
२	श्री अजितनाथ जी	अयोध्या/विनीता / साकेत	सम्मेद शिखरजी	सिद्धवर कूट
३	श्री संभवनाथ जी	श्रावस्ती	सम्मेद शिखरजी	धवल कूट
४	श्री अभिनन्दन जी	अयोध्या/विनीता / साकेत	सम्मेद शिखरजी	आनंद कूट
५	श्री सुमितनाथ जी	अयोध्या/विनीता / साकेत	सम्मेद शिखरजी	अविचल कूट
६	श्री पदमप्रभु जी	कौशाम्बी	सम्मेद शिखरजी	मोहन कूट
७	श्री सुपार्श्वनाथ जी	वाराणसी	सम्मेद शिखरजी	प्रभास कूट
८	श्री चन्दप्रभु जी	चन्द्रपुरी	सम्मेद शिखरजी	ललित कूट
९	श्री पुष्पदंत जी	काकन्दी	सम्मेद शिखरजी	सुप्रभ कूट
१०	श्री शीतलनाथ जी	भद्दलपुर	सम्मेद शिखरजी	विद्युत कूट
११	श्री श्रेयांसनाथ जी	सिंहपुरी	सम्मेद शिखरजी	संकुल कूट
१२	श्री वासुपूज्य जी	चम्पापुरी	चम्पा पुरी	मंदारगिरि कूट
१३	श्री विमलनाथ जी	कम्पिला	सम्मेद शिखरजी	सुवीर कूट
१४	श्री अनन्तनाथ जी	अयोध्या/विनीता / साकेत	सम्मेद शिखरजी	स्वयंवर कूट
१५	श्री धर्मनाथ जी	रतनपुरी	सम्मेद शिखरजी	सुदत्तवर कूट
१६	श्री शांतिनाथ जी	हस्तिनापुर	सम्मेद शिखरजी	कुंद प्रभ कूट
१७	श्री कुंथुनाथ जी	हस्तिनापुर	सम्मेद शिखरजी	ज्ञानधर कूट
१८	श्री अरहनाथजी	हस्तिनापुर	सम्मेद शिखरजी	नाटक कूट
१९	श्री मल्लिनाथ जी	मिथिला	सम्मेद शिखरजी	संवल कूट
२०	श्री मुनिसुव्रत नाथ जी	मिथिला	सम्मेद शिखरजी	निर्जर कूट
२१	श्री नमिनाथ जी	राजगृही	सम्मेद शिखरजी	मित्रधर कूट
२२	श्री नेमिनाथ जी	शौरीपुर	गिरनार पर्वत	गिरनार / रैवतक / ऊर्जयन्त
२३	श्री पार्श्वनाथ जी	वाराणसी	सम्मेद शिखरजी	स्वर्ण भद्र कूट
२४	श्री महावीर स्वामी जी	कुण्डग्राम / कुण्डलपुर	पावापुरी	पद्म सरोवर

प्रश्न ३५. बाल ब्रह्मचारी किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो स्वेच्छा से शादी नहीं करते, जीवन पर्यन्त स्त्री सम्बन्धी विषय विकारों से विरक्त रहते हैं, मन, वचन, काय से अब्रह्म (कुशील सेवन) के त्यागी होते हैं तथा अपना जीवन धर्म साधना में व्यतीत करके परम ब्रह्म की अवस्था को प्राप्त करने में पुरुषार्थ शील रहते हैं, ऐसे वे महापुरुष बाल ब्रह्मचारी धन्यभागी कहे जाते हैं।

प्रश्न ३६. एक पद से अधिकपद के धारी कितने तीर्थंकर हुए और कौन–कौन से ? तीर्थंकर व पदों के नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– एक पद से अधिक पद के धारी ३ तीर्थंकर हुए– १. श्री शांतिनाथ जी २. श्री कुंथुनाथ जी ३. श्री अरनाथ जी। उक्त तीनों तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव पद को धारण करने वाले थे।

प्रश्न ३७. वर्तमान कालीन २४ तीर्थंकरों में से प्रथम व अंतिम तीर्थंकर के दादा–दादी का नाम क्या था?

उत्तर– वर्तमानकालीन २४ तीर्थंकरों में से प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव जी के दादा का नाम श्री "प्रसेनजित" व दादी का नाम "श्रीमती अमृतमती" था। अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के दादा का नाम "श्री सर्वार्थ" व दादी का नाम "श्रीमती श्रीमतीदेवी" था।

प्रश्न ३८. धर्म का विच्छेद किन–किन तीर्थंकरों के काल में हुआ एवं सर्वाधिक तीर्थंकर (ढाई द्वीप में) कौन से तीर्थंकर के काल में हुए?

उत्तर– श्री पुष्पदंत जी से लेकर श्री धर्मनाथ जी तक (७) तीर्थंकरों के काल में क्रमशः १/४ पल्य, १/२ पल्य, ३/४ पल्य, १ पल्य, ३/४ पल्य, १/२ पल्य, १/४ पल्य तक का धर्म विच्छेद हुआ। ढाई द्वीप में सर्वाधिक तीर्थंकर (१७०) श्री अजितनाथ जी भगवान के काल में हुए। .

प्रश्न ३९. किन–किन तीर्थंकरों पर मुनि अवस्था में उपसर्ग आया?

उत्तर– श्री सुपार्श्व नाथ जी, श्री पार्श्वनाथ जी, श्री महावीर स्वामी जी इन ३ तीर्थंकरों पर मुनि अवस्था में हुण्डावसर्पिणी काल के प्रभाव से उपसर्ग आया।

प्रश्न ४०. तीर्थंकरों की सबसे बड़ी पद्मासन व खड्गासन मूर्ति (पाषाण की) कहाँ पर विराजमान है एवं वह कौन से तीर्थंकर की है?

उत्तर– श्री आदिनाथ भगवान प्रथम तीर्थंकर की सबसे बड़ी खड्गासन की मूर्ति मांगीतुंगी में है जो १०८ फीट की है तथा पद्मासन में सबसे बड़ी मूर्ति श्री सुपार्श्वनाथ भगवान की है जो गोपाचल (ग्वालियर) में विराजमान है, जिसकी ऊँचाई ४७ फीट है। ये दोनों मूर्तियाँ विश्व की सबसे बड़ी मूर्तियाँ मानी जाती हैं।

प्रश्न ४१. चक्रवर्ती किसे कहते हैं? कितने होते हैं ? वर्तमान कालीन चक्रवर्तियों के नाम बताइये।

उत्तर– समस्त राजाओं का राजा जो छहखण्ड का अधिपति होता है, सुदर्शन चक्रादि १४ रत्न व ९ निधियों का स्वामी, १८ करोड़ घोड़े, ८४ लाख हाथी, ९६,००० स्त्रियाँ एवं असीमित वैभव का भोक्ता होता है, वह चक्रवर्ती कहलाता है। चक्रवर्ती भरत क्षेत्र व ऐरावत क्षेत्र में चतुर्थ काल में १२ होते हैं। भरतक्षेत्र के १२ चक्रवर्तियों के नाम निम्नांकिन हैं

भरत, सगर, मघवा, सनत, शांति, कुंथ, अरहेश।

सुभौम, पद्म, जयसेन, हरि, ब्रह्मदत्त चक्रेश ।।

प्रश्न ४२. वर्तमानकालीन चतुर्विंशति तीर्थंकरों के नाम, चिह्न, माता का नाम, पिता का नाम, आयु व अवगाहना बतायें।

उत्तर –

क्र.	नाम	माता का नाम	पिता का नाम	चिह्न	आयु	अवगाहना
१	श्री आदिनाथजी	श्रीमती मरुदेवीजी	श्री नभिरायजी	वृषभ	८४ लाखपूर्व	५०० धनुष
२	श्री अजितनाथ जी	विजयसेना	श्री जितशत्रु	गज	७२ लाखपूर्व	४५० धनुष
३	श्री संभवनाथ जी	सुषैणा (सेना)	श्री दृढ़राज्य / जितारि	अश्व	६० लाखपूर्व	४०० धनुष
४	श्री अभिनन्दन जी	सिद्धार्था	श्री स्वयंवर / संवर	बन्दर	५० लाखपूर्व	३५० धनुष
५	श्री सुमितनाथ जी	मंगला/सुमंगला	श्री मेघरथ / मेघप्रभ	चकवा	४० लाखपूर्व	३०० धनुष
६	श्री पदमप्रभु जी	सुसीमा	श्री धरण	लाल कमल	३० लाखपूर्व	२५० धनुष
७	श्री सुपार्श्वनाथ जी	पृथ्वीषैणा	श्री सुप्रतिष्ठ	स्वास्तिक	२० लाखपूर्व	२०० धनुष
८	श्री चन्द्रप्रभु जी	लक्ष्मणा/लक्ष्मीमती	श्री महासेन	अर्द्धचन्द्र	१० लाखपूर्व	१५० धनुष
९	श्री पुष्पदंत जी	जयरामा (रामा)	श्री सुग्रीव	मगर	२ लाखपूर्व	१०० धनुष
१०	श्री शीतलनाथ जी	सुनन्दा (नन्दा)	श्री दृढ़रथ	कल्पवृक्ष	१ लाखपूर्व	९० धनुष
११	श्री श्रेयांसनाथ जी	वेणुश्री/विष्णुश्री	श्री विष्णु	गेंडा	८४ लाखवर्ष	८० धनुष
१२	श्री वासुपूज्य जी	जयावती / विजया	श्री वसुपूज्य	भैंसा	७२ लाखवर्ष	७० धनुष
१३	श्री विमलनाथ जी	जयश्यामा / शर्मा	श्री कृतवर्मा	सूकर	६० लाखवर्ष	६० धनुष
१४	श्री अनन्तनाथ जी	जयश्यामा/सर्वश्यामा	श्री सिंहसेन	सेही	३० लाखवर्ष	५० धनुष
१५	श्री धर्मनाथ जी	सुप्रभा/सुव्रता	श्री भानु / भानुराज	वज्रदण्ड	१० लाखवर्ष	४५ धनुष
१६	श्री शांतिनाथ जी	ऐरादेवी	श्री विश्वसेन	हरिण	१ लाखवर्ष	४० धनुष
१७	श्री कुंथुनाथ जी	श्रीकांता/श्रीमती	श्री सूरसेन / सूर्य	बकरा	९५ हजारवर्ष	३५ धनुष
१८	श्री अरनाथजी	मित्रसेना	श्री सुदर्शन	मत्स्य	८४ हजारवर्ष	३० धनुष
१९	श्री मल्लिनाथ जी	प्रजावती / प्रभावती/रक्षिता	श्री कुम्भ	कलश	५५ हजारवर्ष	२५ धनुष
२०	श्री मुनिसुव्रत नाथ जी	सोमा/पद्मावती	श्री सुमित्र	कछुआ	३० हजारवर्ष	२० धनुष
२१	श्री नमिनाथ जी	महादेवी/वप्रा / वप्रिला	श्री विजय	नीलकमल	१० हजारवर्ष	१५ धनुष
२२	श्री नेमिनाथ जी	शिवादेवी	श्री समुद्रविजय	शंख	१,००० वर्ष	१० धनुष
२३	श्री पार्श्वनाथ जी	ब्राह्मी / वर्मिला / वामा (नामा)	श्री अश्वसेन / विश्वसेन	सर्प	१०० वर्ष	९ हाथ
२४	श्री महावीर स्वामी जी	प्रियंकारिणी/त्रिशला	श्री सिद्धार्थ	सिंह	७२ वर्ष	७ हाथ

प्रश्न ४३. वर्तमान कालीन भरत क्षेत्र सम्बन्धी २४ तीर्थंकरों के पञ्चकल्याणक तिथियाँ कौन–कौन सी हैं? कृपया स्पष्ट करें।

उत्तर –

क्र.	गर्भ तिथि	जन्म तिथि	जन्मतिथि (विशेष)	दीक्षातिथि	दीक्षातिथि (विशेष)	केवलज्ञान तिथि	निर्वाण तिथि	निर्वाण तिथि (विशेष)
१	आषाढ़ कृ. २	चैत्रकृष्ण ९		चैत. कृ ९		फाल्गुन कृ.११	माघकृष्ण १४	
२	ज्येष्ठ कृ. १५	माघ शु. १०		माघ शु.९		पौष शु.१४	चैत्र शु.५	
३	फाल्गुन शु. ८	कार्तिक शु. १५	मार्ग शु. १५		मार्ग शु. १५	का. कृ. ५	चैत्र शु.६	
४	वैशाख शु. ६	माघ शु. १२		माघ शु.१२		का. शु. ५	वैशाख शु. ७	वैशाख शु.६
५	श्रावण शु. २	चैत्र शु. ११	श्रावण शु. ११	वैशाख शु.९		पौष. शु. १५	चैत्र शु. १०	चैत्र शु. ११
६	माघ कृ. ६	कार्तिक कृ. १३	आश्विन कृ. १३	कार्तिक कृ.१३		वै. शु. १०	फाल्गुन कृ. ४	
७	भाद्र शु. ६	ज्येष्ठ शु. १२		ज्येष्ठ शु .१२		फा. कृ. ७	फाल्गुन कृ.६	फाल्गुन कृ. ७
८	चैत्र कृ. ५	पौष कृ. ११		पौष कृ.११		फा. कृ. ७	भाद्र. शु. ७	फाल्गुन शु. ७
९	फाल्गुन कृ ९	मार्ग शु. १		मार्ग शु .१	पौष शु. ११	का. शु. ३	आश्विन शु.८	भाद्र शु. ८
१०	चैत्र कृ. ८	माघ कृष्ण १२		मार्ग कृ.१२		पौष कृ. १४	कार्तिक शु.५	आश्विन शु.५/८
११	ज्येष्ठ कृ. ६	फाल्गुन कृ. ११		फाल्गुन कृ.११		माघ कृ. १५	श्रावण शु. १५	
१२	आषाढ़ कृ. ६	फाल्गुन कृ. १४	फाल्गुन शु. १४	फाल्गुन कृ.१४		माघ शु. २	फाल्गुन कृ.५	भाद्र शु. १४
१३	ज्येष्ठ कृ. १०	माघ शु. ४/१४	माघ शु. १४	माघ शु. ४		पौष शु. १०	आषाढ़ शु. ८	
१४	कार्तिक कृ. १	ज्येष्ठ कृ. १२		ज्येष्ठ कृ. १२		चैत्र कृ.१५	चैत्र कृ. १५	

१५	वैशाख शु. १३	माघ शु. १३		माघ शु. १३	भाद्र शु. १३	पौष शु. १५	ज्येष्ठ कृ.१४	ज्येष्ठ शु. ४
१६	भाद्र कृ.७	ज्येष्ठ कृ. १४	ज्येष्ठ शु. १२	ज्येष्ठ कृ. १४	ज्येष्ठ कृ. १३	पौष शु. ११	ज्येष्ठ कृ.१४	
१७	श्रावण कृ. १०	वैशाख शु. १		वैशाख शु. १		चैत्र शु. ३	वैशाख शु. १	
१८	फाल्गुन कृ. ३	मार्ग शु. १४		मार्ग शु. १०		का. शु. १२	चैत्र कृ. १५	
१९	चैत्र शु. १	मार्ग शु. ११		मार्ग शु. ११	मार्ग शु. १	फा. कृ. १२	फाल्गुन कृ.५	फाल्गुन शु. ७
२०	श्रावण कृ. २	आश्विन शु. १२	मार्ग कृ. १२	वैशाख कृ. १०	वैशाख कृ. ९	फा. कृ. ६	फाल्गुन कृ. १२	माघ शु. १३
२१	आश्विन कृ. २	आषाढ़ कृ. १०	आषाढ़ शु. १०	आषाढ़ कृ.१०	श्रावण शु. ४	चैत्र शु. ३	वैशाख कृ. १४	
२२	कार्तिक शु. ६	श्रावण शु. ६	वैशाख शु. १३	श्रावण शु. ६	माघ शु. ११	आश्वि . शु.१	आषाढ़ कृ. ८	आषाढ़ शु. ८/७
२३	वैशाख कृ. २	पौष कृ. ११		पौष कृ.११		चैत्र कृ. ४	श्रावण शु. ७	
२४	आषाढ़ शु. ६	चैत शु. १३		मार्ग कृष्ण १०		वै. शु. १०	कार्तिक कृ. १५	

प्रश्न ४४. वर्तमान कालीन भरतक्षेत्र सम्बन्धी चतुर्विंशति तीर्थंकरों के पञ्चकल्याणक नक्षत्र कौन–कौन से हैं? कृपया स्पष्ट करें।

उत्तर –

क्र.	गर्भ नक्षत्र	जन्मनक्षत्र	जन्मनक्षत्र (विशेष)	दीक्षा नक्षत्र	केवलज्ञान नक्षत्र	निर्वाण नक्षत्र	निर्वाण नक्षत्र (विशेष)
१	उत्तराषाढ़	उत्तराषाढ़ा		उत्तराषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा	उत्तराषाणा	अभिजित्
२	रोहिणी	रोहिणी		रोहिणी	रोहिणी	भरणी	रोहिणी
३	मृगशिरा	ज्येष्ठा	पूर्वाषाढा, मृगशिरा	ज्येष्ठा	ज्येष्ठा	ज्येष्ठा	मृगशिरा
४	पुनर्वसु	पुनर्वसु		पुनर्वसु	पुनर्वसु	पुनर्वसु	
५	मघा	मघा	चित्रा	मघा	हस्त	मघा	
६	चित्रा	चित्रा		चित्रा	चित्रा	चित्रा	
७	विशाखा	विशाखा		विशाखा	विशाखा	अनुराधा	विशाखा
८		अनुराधा		अनुराधा	अनुराधा	ज्येष्ठा	
९	मूल	मूल		अनुराधा	मूल	मूल	
१०	पूर्वाषाढा	पूर्वाषाढ़ा		मूल/ पूर्वाषाढ़	पूर्वाषाढ़ा	पूर्वाषाणा	
११	श्रवण	श्रवण		श्रवण	श्रवण	धनिष्ठा	
१२	शतभिषा	विशाखा	शतभिषा	विशाखा	विशाखा	अश्विनी	विशाखा
१३	उत्तरा भाद्रप्रद	पूर्वभाद्रप्रद	उत्तराभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद	उत्तराषाढ़ा	पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद/ उत्तराषाढ़ा
१४	रेवती	रेवती		रेवती	रेवती	रेवती	
१५	रेवती	पुष्य		पुष्य	पुष्य	पुष्य	
१६	भरणी	भरणी		भरणी	भरणी	भरणी	
१७	कृतिका	कृत्तिका		कृत्तिका	कृत्तिका	कृत्तिका	
१८	रेवती	रोहिणी	पुष्य	रेवती	रेवती	रोहिणी	रेवती
१९	अश्विनी	अश्विनी		अश्विनी	अश्विनी	भरणी	
२०	श्रवण	श्रवण		श्रवण	श्रवण	श्रवण	पुष्य
२१	अश्विनी	अश्विनी	स्वाति	अश्विनी	अश्विनी	अश्विनी	
२२	उत्तराषाढ़ा	चित्रा		चित्रा	चित्रा	चित्रा	
२३	विशाखा	विशाखा		विशाखा	विशाखा	विशाखा	
२४	उत्तराषाढ़ा	उत्तराफाल्गुनी		उत्तराफाल्गुनी	मघा	स्वाति	

प्रश्न ४५. वर्तमान कालीन चतुर्विंशति तीर्थंकरों के यक्ष, यक्षिणी, वैराग्य का कारण, दीक्षा वन, दीक्षा वृक्ष, सहदीक्षित, छद्मस्थ काल, केवलज्ञान वन, केवलज्ञान वृक्ष एवं केवलज्ञान स्थान इन सबका विवरण दीजिए।

उत्तर

क्र.	यक्ष	यक्षिणी	वैराग्य का कारण	दीक्षा वन
१	गोवदन	चक्रेश्वरी	नीलांजना-मरण	सिद्धार्थ
२	महायक्ष	रोहिणी	उल्कापात	सहेतुक
३	त्रिमुख	प्रज्ञप्ति	मेघ	सहेतुक
४	यक्षेश्वर	वज्रश्रृंखल	गन्धर्व नगर	उग्र / अग्रोद्यान
५	तुम्बुरव	वज्रांकुशा	जाति-स्मरण	सहेतुक
६	मातंग	अप्रतिचक्रेश्वरी	जाति-स्मरण	मनोहर
७	विजय	पुरुषदत्ता	पतझड़	सहेतुक
८	अजित	मनोवेगा	पतझड़ / तडिद्	सर्वार्थ / सुवर्तक
९	ब्रह्म	काली	उल्कापात	पुष्पक / पुष्प
१०	ब्रह्मेश्वर	ज्वालामालिनी	हिमनाश	सहेतुक
११	कुमार	महाकाली	पतझड़	मनोहर
१२	शन्मुख	गौरी	जाति-स्मरण	मनोहर
१३	पाताल	गांधारी	मेघ	सहेतुक
१४	किन्नर	बैरोटी	उल्कापात	सहेतुक
१५	किंमपुरुष	सोलसा	उल्कापात	शालि / शाल
१६	गरुड	मानसी	जातिस्मरण	आम्रवन / सहस्राम्र
१७	गन्धर्व	महामानसी	जातिस्मरण	सहेतुक
१८	कुबेर	जया	मेघ	सहेतुक
१९	वरुण	विजया	ताडित् (तडिद्)	शालि / श्वेत
२०	भृकुटि	अपराजिता	जातिस्मरण	नील
२१	गोमेध	बहुरुपिणी	जातिस्मरण	चैत्र
२२	पार्श्व	कूष्मांडी (अम्बिका)	जातिस्मरण	सहस्राम्र / सहकार / सहस्रार
२३	मातंग	पद्मा	जातिस्मरण	अश्वत्थ / अश्ववन
२४	गुह्यक	सिद्धायिनी	जातिस्मरण	नाथ / षण्डवन

क्र.	दीक्षा वृक्ष	सहदीक्षित	छद्मस्थ काल	केवलज्ञान वन	केवलज्ञान वृक्ष	केवलज्ञान स्थान
१	वट	४०००	१००० वर्ष	पुरिमताल / शकट	वट (न्यग्रोध)	पुर्वतालक / पुरिमताल
२	सप्तपर्ण	१०००	१२ वर्ष	सहेतुक वन	सप्तपर्ण	अयोध्या / साकेत
३	शाल / शाल्मलि	१०००	१४ वर्ष	सहस्राम वन / सहेतुक	शाल / शाल्मलि	श्रावस्ती
४	सरल/असन	१०००	१८ वर्ष	आम्र वन / उग्र वन	सरल / असन	अयोध्या
५	प्रियंगु	१०००	२० वर्ष	सहेतुक वन	प्रियंगु	अयोध्या
६	प्रियंगु	१०००	६ मास	मनोहर वन	प्रियंगु	कौशाम्वी / वर्धमानवन
७	श्रीष	१०००	९ वर्ष	सहेतुक वन	श्रीष	काशी
८	नाग	१०००	३ मास	सर्वार्थ / सुर्वतक	नाग	चन्द्रपुरी
९	साल / नाग	१०००	४ वर्ष X	पुष्पक वन / पुष्प वन	अक्ष (बहेडा) / नाग	काकन्दी
१०	प्लक्ष / बेल	१०००	३ वर्ष X	मनोहर वन / सहेतुक	धुलीशाल / बेल	भद्रिल
११	तेन्दु / तुम्बुर	१०००	२ वर्ष X	मनोहर वन	तेन्दू / तुम्बुर	सिंहनादपुर
१२	पाटला / कदम्ब	६०६	१ वर्ष X	रजतमालिका तट / मनोहर वन	पाटल / कदम्ब	चम्पापुरी
१३	जम्बू / जम्बु	१०००	३ वर्ष X	सहेतुक वन	जम्बु	कम्पिला
१४	पीपल / अश्वत्थ	१०००	२ वर्ष X	सहेतुक वन	पीपल	अयोध्या
१५	दधिपर्ण / सप्तच्छद	१०००	१ वर्ष X	शालवन / सहेतुक	दाधिपर्ण / सप्तच्छद	रत्नपुर
१६	नन्द / नद्यावर्त	१०००	१६ वर्ष	सहेतुक / सहस्राम्र	नन्दी	हस्तिनापुर
१७	तिलक	१०००	१६ वर्ष	सहेतुक वन	तिलक	हस्तिनापुर
१८	आम्र	१०००	१६ वर्ष	सहेतुक वन	आम्र	हस्तिनापुर
१९	अशोक	३००	६ दिन	श्वेत वन / मनोहर वन	अशोक (कंकेलि)	मिथिला
२०	चंपक	१०००	११ मास	नील वन	चम्पक	कुशाग्रनगर
२१	बकुल	१०००	९ वर्ष	चित्र वन	बकुल	मिथिला
२२	मेघशृंग / बाँस	१०००	५६ दिन	सहस्रार वन	मेषशृंग / बाँस	गिरनार
२३	धव / देवदारु	३००	४ मास	अश्व वन	धव / देवदारु	आश्रमकेस
२४	साल	एकाकी	१२ वर्ष	ऋजकूला तट / षण्ड वन	शाल	ऋजुकूला

X = हरिवंश पुराण में सर्वत्र वर्ष की जगह मास दिये हैं।

प्रश्न ४६. वर्तमान कालीन २४ तीर्थंकरों के सर्व ऋषि, सर्व आर्यिका, कुल गणधर, मुख्य गणधर मुख्य श्रोता, मुख्य आर्यिका, प्रथम आहार दाता एवं सहमुक्त के बारे में बताइये।

उत्तर –

क्र.	सर्व ऋषि	सर्व आर्यिका	कुलगणधर	सहमुक्त
१	८४०००/८४०८४	३५००००	८४	१०,०००
२	१०००००	३२००००	९०	१०००
३	२०००००	३३०००० / ३२००००	१०५	१०००
४	३०००००	३३०६०० / ३३००००	१०३	१०००
५	३२००००	३३००००	११६	१०००
६	३३००००	४२००००	१११/११०	३२४ / ३८०० / १०००
७	३०००००	३३००००	९५	५०० / १०००
८	२५००००	३८००००	९३	१०००
९	२०००००	३८००००	८८	१०००
१०	१०००००	३८००००	८७/८१	१०००
११	८४०००	१३०००० / १२००००	७७	१०००
१२	७२०००	१०६०००	६६	६०१ / ९४
१३	६८०००	१०३०००	५५	६०० / ६०००
१४	६६०००	१०८०००	५०	७००० / ६१००
१५	६४०००	६२४००	४३	८०१ / ९००
१६	६२०००	६०३००	३६	९०० / ९०००
१७	६००००	६०३५०	३५	१०००
१८	५००००	६००००	३०	१०००
१९	४००००	५५०००	२८	५०० / ५०००
२०	३००००	५००००	१८	१०००
२१	२००००	४५०००	१७	१०००
२२	१८०००	४००००	११	५३६ / ५३३
२३	१६०००	३८००० / ३६०००	१०	३६ / ५३६
२४	१४०००	३६००० / ३५०००	११	एकाकी / ३६

क्र.	मुख्य गणधर	मुख्य श्रोता	मुख्य आर्यिका	प्रथम आहार दाता
१	ऋभषसेन/वृषभसेन	भरत	ब्राह्मी	श्रेयांसराजा
२	केसरीसेन/सिंहसेन	सगर	प्रकुब्जा/कुब्जा	ब्रह्मदत
३	चारुदत्त/चारुसेन	सत्यवीर्य	धर्मश्री/धर्मार्या	सुरेन्द्रदत्त
४	वज्रचमर/वज्र/वज्रनाभि	मित्रभाव	मेरुषैणा	इन्द्रदत्त
५	वज्र/चमर/अमर	मित्रवीर्य	अनन्ता/अनन्तमती	पद्मदत्त
६	चमर/वज्र चमर / चामर	धर्मवीर्य	रतिषेणा	सोमदत्त
७	बलदत्त/ बलिदत / बलि / बल	दानवीर्य	मीना/मीनार्या	मेन्द्रदत्त
८	वैदर्भ/दत्तक / दत्त	मघवा	वरुणा	पुष्यमित्र
९	नाग (अनगार) / वैदर्भ	बुद्धिवीर्य	घोषा/घोषार्या	पुनर्वसु
१०	कुन्थु/अनगार	सीमन्धर	धरणा	नन्दन
११	धर्म/कुन्थु	त्रिपष्ठ	चारणा/धारणा	सौनदर
१२	मन्दिर/सुधर्म / धर्म	स्वयंभू	वरसेना/सेना	जय
१३	जय/मन्दरार्य / मन्दर	पुरुषोत्तम	पद्मा	विशाख
१४	अरिष्ट/जय	पुरुषपुण्डरीक	सर्वश्री	धान्यसेन
१५	सेन/अरिष्टसेन	सत्यदत्त	सुव्रता	धरममित्र
१६	चक्रायुध	कुनाल	हरिषैणा	सुमित्र
१७	स्वयंभू	नारायण	भाविता	अपराजित
१८	कुम्भ	सुभौम	कुंथुसेना/यक्षिता	नन्दी
१९	विशाख/कुंथु	सार्वभौम	मधुसेना/बंधुसेना	नन्दीसेन
२०	मल्लि	अजितञ्जय	पूर्वदत्ता/पुष्पदंता	वृषभदत्त
२१	सप्रभ/सोमक	विजय	मार्गिणी/मंगिनी	दत्त
२२	वरदत्त	उग्रसेन	यक्षिणी/राजमती	वरदत्त
२३	स्वयंभू	महासेन	सुलोका/सलोचना	धान्यसेन
२४	इन्द्रभूति	श्रेणिक	चन्दना	राजा कूल

प्रश्न ४७. वर्तमानकालीन चतुर्विंशति तीर्थंकरों के श्रावक, श्राविका, केवली काल, योग निवृत्तिकाल, तीर्थकाल, वंश, पूर्वभव का नाम (देवगति से पूर्व), व पिता का नाम बताइये।

उत्तर –

क्र.	श्रावक	श्राविका	केवली काल	योग निवृत्ति काल
१	३०००००	५०००००	१ लाख पूर्व–१००० वर्ष	१४ दिन पूर्व
२	३०००००	५०००००	१ लाख पूर्व (१पूर्वांग १२ ”)	१ मास ”
३	३०००००	५०००००	१ लाख पूर्व (४पूर्वांग १४ ”)	”
४	३०००००	५०००००	१ लाख पूर्व (८ पूर्वांग१८ ”)	”
५	३०००००	५०००००	१ लाख पूर्व (१२पूर्वांग २० ”)	”
६	३०००००	५०००००	१ लाख पूर्व (१६पूर्वांग ६ मास)	”
७	३०००००	५०००००	१ लाख पूर्व (२०पूर्वांग ९ मास)	”
८	३०००००	५०००००	१ लाख पूर्व (२४पूर्वांग ३ मास)	”
९	२०००००	४००००० / ५लाख	१ लाख पूर्व (२८पूर्वांग ४ वर्ष) X	”
१०	२०००००	४०००००	२५००० पूर्वांग–३ वर्ष X	”
११	२०००००	४०००००	२०९९९९८ वर्ष X	”
१२	२०००००	४०००००	५३९९९९९ वर्ष X	”
१३	२०००००	४०००००	१४९९९९७ वर्ष X	”
१४	२०००००	४०००००	७४९९९८ वर्ष X	”
१५	२०००००	४०००००	२४९९९९ वर्ष X	”
१६	२०००००	४०००००	२४९८४ वर्ष	”
१७	१०००००	३०००००	२३७३४ वर्ष	”
१८	१०००० / १६००००	३०००००	२०९८४ वर्ष	”
१९	१०००००	३०००००	५४९०० वर्ष – ६ दिन	”
२०	१०००००	३०००००	७४९९ वर्ष + १ मास	”
२१	१०००००	३०००००	२४९१ वर्ष	”
२२	१०००००	३०००००	६९९ वर्ष १० मास ४ दिन	”
२३	१०००००	३०००००	६९ वर्ष ८ मास	”
२४	१०००००	३०००००	३० वर्ष	२ दिन पूर्व

X = हरिवंश पुराण में सर्वत्र वर्ष की जगह मास दिये हैं।

क्र.	तीर्थकाल	वंश	देवगति से पूर्व	पिता का नाम
१	५० लाख को. सा.+१ पूर्वांग	इक्ष्वाकु	वज्रनाभि	वज्रसेन
२	३० लाख को. सा.+३ पूर्वांग	इक्ष्वाकु	विमलवाहन/विमल	महातेज / अरिंदम
३	१० लाख को. सा.+४ पूर्वांग	इक्ष्वाकु	विमलवाहन/विपुलख्याति/ विपुलवाहन	रिपुंदम / स्वयंप्रभ
४	९लाख को. सा.+४ पूर्वांग	इक्ष्वाकु	महाबल/विपुलवाहन	स्वयंप्रभ / विमलवाहन
५	९०००० को. सा. +४ पूर्वांग	इक्ष्वाकु	रतिषेण/महाबल/अतिबल	विमलवाहन / सीमंधर
६	९०००को. सा. +४ पूर्वांग	इक्ष्वाकु	अपराजित/अतिबल	सीमंधर / पिहितास्रव
७	९००को. सा. +४ पूर्वांग	इक्ष्वाकु	नन्दिषेण/अपराजित	पिहितास्रव / अरिंदम (अरहनंद)
८	९०को. सा. +४ पूर्वांग	इक्ष्वाकु	पद्मनाभ /नन्दिषेण/पद्म	अरिन्दम / युगंधर (श्रीधर)
९	९ को. सा–१/४ प. + (१ला.पूर्व.–२८ पूर्वांग)	इक्ष्वाकु	महापद्म/पद्म	युगनध्र / सर्वजनानन्द (मूर्तिहित)
१०	१ को. सा. [(१०० सा–१/२ प.)+ (२५००० पूर्व–६६२६००० वर्ष)]	इक्ष्वाकु	पद्मगुल्म/महापद्म	सर्वजनानंद / अभयानंद (आनंद)
११	(५४ सा०+२१ ला. वर्ष)–३/४पल्य	इक्ष्वाकु	नलिनप्रभ/पद्मोत्तर/नलिनगुल्म	अभयानंद / वज्रदत्त (अनंत)
१२	(३० सा०+५४ ला. वर्ष)–१पल्य	इक्ष्वाकु	पद्मोत्तर/पङ्कजगुल्म	वज्रदन्त / वज्रनाभि (युगंधर)
१३	(९ सा०+१५ ला. वर्ष)–३/४ पल्य	इक्ष्वाकु	पद्मसेन/नलिनगुल्म/पद्मासन	वज्रनाभि / सर्वगुप्त
१४	(४ सा०+७५०००० वर्ष)–३/४पल्य	इक्ष्वाकु	पद्मरथ/पद्मासन/पद्म	सर्वगुप्ति / स्वयंप्रभ (त्रिगुप्ता)
१५	(३ सा०+२५०००० वर्ष)	कुरु	दशरथ/पद्मरथ	तुप्तिमान / चिन्तरक्ष
१६	१/२ पल्य + १२५० वर्ष	इक्ष्वाकु	मेघरथ/दृढ़रथ	चिन्तारक्ष / विमलवाहन
१७	१/४ पल्य–९९९९९९७२५० वर्ष	कुरु / इक्ष्वाकु	सिंहरथ/महामेघरथ	विपुलवाहन / धनरथ / यतिवृषभ
१८	९९९९९६६१०० वर्ष	कुरु / इक्ष्वाकु	धनपति/सिंहरथ	धनरथ / संवर (अरहनंद)
१९	५४४७४०० वर्ष	इक्ष्वाकु	वैश्रवण	धीर / वरधर्म (श्रीनाग)
२०	६०५००० वर्ष	यादव / हरिवंश	हरिवर्मा/श्रीधर्म	संवर / सुनंद (अनंतवीर्य)
२१	५०१८०० वर्ष	इक्ष्वाकु	सिद्धार्थ/सुरश्रेष्ठ	त्रिलोकीय / नंद (महाबल)
२२	८४३८० वर्ष	यादव / हरिवंश	सुप्रतिष्ठ/सिद्धार्थ	सुनन्द / व्यतीतशोका (सुमंधर)
२३	२७८ वर्ष	उग्र	आनन्द	डामर / दामर (समुद्रदत्त)
२४	२१०४२ वर्ष	नाथ	नन्द/सुनन्द/नन्दन	प्रौष्ठिल

प्रश्न ४८. विदेह क्षेत्र के तीर्थकरों के नाम, चिन्ह, जन्म नगरी, पिता व माता के नाम बताएं? (विदेह क्षेत्र विंशति तीर्थंकर–परिचय)

क्र.	नाम	चिन्ह	जन्म नगरी	पिता	माता
१	श्री सीमन्धर जी	ऋषभ	पुण्डरीकिणी	श्री हसंजी	
२	श्री युगमन्धर जी			श्री श्रीरुह	
३	श्री बाहु जी	हिरण	सुसीमा	श्री सुग्रीव	श्रीमती विजयाजी
४	श्री सुबाहु जी		अवध्यदेश		श्रीमती सुनन्दाजी
५	श्री संजात जी	सूर्य	अलकापुरी	श्री देवसेन	
६	श्री स्वयं प्रभ जी	चन्द्रमा	मंगला		
७	श्री वृषभानन जी		सुसीमा		श्रीमती वीरसेना
८	श्री अनन्त वीर्य जी				
९	श्री सूरिप्रभ जी	ऋषभ			
१०	श्री विशालप्रभ जी	इन्द्र	पुण्डरीकिणी	श्री वीर्य	श्रीमती विजया
११	श्री वज्रधर जी	शंख		श्री पद्मरथ	श्रीमती सरस्वती
१२	श्री चन्द्रानन जी	गो	पुण्डरीकिणी		श्रीमती दयावती
१३	श्री चंद्रबाहु जी	कमल			श्रीमती रेणुका
१४	श्री भुजंगम जी	चन्द्रमा		श्री महाबल	
१५	श्री ईश्वर जी		सुसीमा	श्री गलसेन	श्रीमती ज्वाला
१६	श्री. नेमिप्रभ जी	सूर्य			
१७	श्री वीरसेन जी		पुण्डरीकिणी	श्री भूमिपाल	श्रीमती वीरसेना
१८	श्री महाभद्र जी		विजया	श्री देवराज	श्रीमती उमा
१९	श्री देवयश जी		सुसीमा	श्री स्तवभूति	श्रीमती गंगा
२०	श्री अजित वीर्य जी	कमल		श्री कनक	

प्रश्न ४९. कामदेव किसे कहते हैं? कितने होते हैं? वर्तमान कालीन कामदेवों के नाम बताओ किन तीर्थंकर के काल में हुए, कौन सी गति पाई एवं निर्वाण स्थली बताओ ?

उत्तर– जिनका रूप अत्यन्त सुन्दर होता है, जिन्हें देखकर सामान्य व्यक्ति मोहित हो जाते हैं उस परम रूपराशि के धारक महापुरुष कामदेव कहलाते हैं। भरत, ऐरावत क्षेत्रों की अपेक्षा कामदेव २४ ही होते हैं। इनके नाम निम्नांकित है –

कामदेवों के नाम	कौन से तीर्थकाल में हुए	कौन सी गति पाई	निवार्ण क्षेत्र
बाहुबलि	श्री आदिनाथ जी	सिद्ध भये	पोदनपुर
प्रजापति	श्री अजितनाथ जी	सिद्ध भये	पोदनपुर
श्रीधर	श्री सम्भवनाथ जी	सिद्ध भये	पोदनपुर
दर्शनिभद्र	श्री अभिनंदन जी	सिद्ध भये	पोदनपुर
प्रसेनचन्द्र	श्री सुमतिनाथ जी	सिद्ध भये	पोदनपुर
चन्द्रवर्ण	श्री पद्मप्रभु जी	सिद्ध भये	पोदनपुर
अग्निमुख	श्री सुपार्श्वनाथ जी	सिद्ध भये	पोदनपुर
सनत्कुमार	श्री चन्द्रप्रभु जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
वत्सराज	श्री पुष्पदंत जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
कनकप्रभ	श्री शीतलनाथ जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
मेघप्रभ	श्री श्रेयांसनाथ जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
शांतिप्रभ	श्री शांतिनाथ जी	सिद्ध भये	सम्मेदशिखर
कुंथुनाथ	श्री कुंथुनाथ जी	सिद्ध भये	सम्मेदशिखर
अरनाथ	श्री अरनाथ जी	सिद्ध भये	सम्मेदशिखर
विजयराज	श्री अरनाथ जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
श्रीचन्द्र	श्री मल्लिनाथ जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
नलराज	श्री मल्लिनाथ जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
हनुमंत	श्री मुनिसुव्रत जी	सिद्ध भये	तुंगगिरि
बलिराज	श्री नमिनाथ जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
वसुदेव	श्री नेमिनाथ जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
प्रद्युम्न	श्री नेमिनाथ जी	सिद्ध भये	उजर्यन्तगिरि
नागकुमार	श्री पार्श्वनाथ जी	सिद्ध भये	कैलास पर्वत
जीवन्धर	श्री महावीर स्वामी जी	सिद्ध भये	सिद्धवरकूट
जम्बूस्वामी	श्री महावीर स्वामी जी	सिद्ध भये	मथुरा चौरासी

प्रश्न ५०. भरतक्षेत्रस्थ भविष्यकालीन व भूतकालीन तीर्थंकर किन नामों से प्रसिद्ध हैं?

उत्तर–

क्र.	भूतकालीन तीर्थंकर		भविष्यकालीन
१	श्री निर्वाण जी	श्री निर्वाणजी	श्री महापद्म जी
२	श्री सागर जी	श्री सागर जी	श्री सुरदेव जी
३	श्री महासाधु जी	श्री महासाधुजी	श्री सुपार्श्व जी
४	श्री विमलप्रभ जी	श्री विमल प्रभजी	श्री स्वयंप्रभ जी
५	श्री शुद्धाभदेव जी	श्रीधरजी	श्री सर्वप्रभ जी / सर्वात्मभूतजी
६	श्री श्रीधर जी	श्री सुदत्तजी	श्री देवसुत जी / देवपुत्र जी
७	श्री श्रीदत्त जी	श्रीअमल प्रभजी	श्री कुलसुत जी / कुल पुत्र
८	श्री सिद्धाभदेव जी	श्री उद्धर देवजी	श्री उदङ्ग जी
९	श्री अमलप्रभ जी	श्री अङ्गिर देवजी	श्री प्रौष्ठिल जी
१०	श्री उद्धार देव जी	श्री सन्मतिदेवजी	श्री जयकीर्ति जी
११	श्री अग्निदेव जी	श्री सिंधुदेवजी	श्री मुनिसुव्रत जी
१२	श्री संयम जी	श्री कुसुमाञ्जलिजी	श्री अर जी
१३	श्री शिव जी	श्री शिवगणजी	श्री निष्पाप जी / अपाप जी
१४	श्री पुष्पांजलि जी	श्री उत्साह देवजी	श्री नि:कषाय जी
१५	श्री उत्साह जी	श्री ज्ञानेश्वर जी	श्री विपुल जी
१६	श्री परमेश्वर जी	श्री परमेश्वर देवजी	श्री निर्मल जी
१७	श्री ज्ञानेश्वर जी	श्री विमलेश्वरजी	श्री चित्रगुप्त जी
१८	श्री विमलेश्वर जी	श्री यशोधर देवजी	श्री समाधिगुप्त जी
१९	श्री यशोधर जी	श्री कृष्णमति जी	श्री स्वयंभू जी
२०	श्री कृष्णमति जी	श्री ज्ञानमतिजी	श्री अनिवर्तक जी
२१	श्री ज्ञानमति जी	श्री शुद्धमतिजी	श्री जयदेव / जय / विजय
२२	श्री शुद्धमति जी	श्री भद्र देवजी	श्री विमल जी
२३	श्री श्रीभद्र जी	श्री अतिक्रान्त जी	श्री देवपाल जी / दिव्यपाद
२४	श्री अनन्तवीर्य जी	श्री शान्तनाथ जी	श्री अनन्तवीर्य जी

******

अध्याय–९

जिनेन्द्र–देव–दर्शन–विधि

प्रश्न १. देव दर्शन का अर्थ क्या है ?

उत्तर– वीतरागी, सर्वज्ञ, परम हितोपदेशी, जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करना ही देव दर्शन कहलाता है।

प्रश्न २. क्या दर्शन शब्द का अर्थ देखना होता है ?

उत्तर– हाँ, दर्शन शब्द का अर्थ देखना होता है किन्तु, यहाँ देखने का आशय चर्म चक्षुओं के देखने मात्र से नहीं है अपितु, श्रद्धा, भक्ति व समर्पण से युक्त होकर वीतरागी भगवान जिनेन्द्र की मूर्ति में मूर्तिमान जिनेन्द्र भगवान को निहारने से है।

प्रश्न ३. जिनेन्द्र देव के दर्शन करने कहाँ जाना चाहिए ?

उत्तर– जिनेन्द्र देव के दर्शन करने जिन मंदिर, समवशरण, जिनालय, चैत्यालय में जाना चाहिए।

प्रश्न ४. जिन मंदिर किसे कहते हैं ? क्या उक्त चारों शब्द एकार्थवाची हैं ?

उत्तर– जहाँ जिनेन्द्र भगवान विराजमान हों उसे **जिन मंदिर या समवशरण** कहते हैं एवं जहाँ जिन मूर्ति विराजमान हों उसे जिनालय या **चैत्यालय** कहते हैं। सामान्यतया उक्त चारों शब्द एकार्थवाची हैं, विशेष रूप से देखने पर कुछ अंतर दृष्टिगोचर होता है।

प्रश्न ५. विशेष रूप से चारों शब्दों की क्या–क्या परिभाषाएँ हैं ?

उत्तर– **जिन मंदिर** – जहाँ जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति विराजमान हो, ऐसा पुनीत स्थान भवन तथा जिस जिन–भवन का शिखर भी हो वे जिन मंदिर कहलाते हैं।

समवशरण – जहाँ चिन्मय अरिहंत परमेष्ठी विराजमान हों, बारह सभायें लगी हों, जहाँ दिव्य ध्वनि खिर रही हो, ऐसी तीर्थंकरों की धर्म सभा का नाम समवशरण है।

जिनालय – जहाँ जिनेन्द्र भगवान का आलय हो उसे जिनालय कहते हैं, इसमें चेतन व अचेतन दोनों रूपों की अपेक्षा हो सकती है।

चैत्यालय – जहाँ जिन चैत्य विराजमान हों उसे चैत्यालय कहते हैं।

प्रश्न ६. चैत्य किसे कहते हैं, इसके कितने भेद हैं व कौन–कौन से है ? बतलाने की कृपा करें ।

उत्तर– चैत्य का अर्थ होता है, प्रतिमा/मूर्ति/बिम्ब। चैत्य के दो भेद होते हैं– (१) कृत्रिम चैत्य (२)

अकृत्रिम चैत्य। दूसरी प्रकार से भी दो भेद होते हैं- (१) स्थावर चैत्य (२) जंगम चैत्य।

प्रश्न ७. कृत्रिम व अकृत्रिम शब्दों के क्या अभिप्राय हैं ?

उत्तर- कृत्रिम का अर्थ है- मानवादि कृत एवं अकृत्रिम का अर्थ होता है सहजोत्पन्न या अनादिकाल से विद्यमान अर्थात् जो किसी के द्वारा बनाये गये हैं, वे **कृत्रिम** एवं जिन्हें किसी ने नहीं बनाया वे **अकृत्रिम** कहलाते हैं।

प्रश्न ८. स्थावर व जंगम प्रतिमा का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर- चैतन्यता से रहित पुद्गल परमाणुओं द्वारा निर्मित प्रतिमा **स्थावर प्रतिमा** कहलाती हैं एवं चैतन्यमय समवशरण में विराजमान जिनेन्द्र भगवान **जंगम प्रतिमा** कहलाते हैं।

प्रश्न ९. जिनेन्द्र भगवान के दर्शन हेतु जाने से पूर्व कौन-कौन सी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है ?

उत्तर- जिनेन्द्र भगवान के दर्शन हेतु जाने के पूर्व घर में रहते हुए निम्न छह बातों का ध्यान रखना आवश्यक है -

(१) स्नान करके मन्दिर जायें (२) शुद्ध वस्त्र पहन कर मन्दिर जायें (३) पूजन की द्रव्य लेकर मन्दिर जायें, अर्थात् खाली हाथ मन्दिर न जायें (४) घर रहते हुए भी जिनेन्द्र भगवान के दर्शन की प्यास जाग्रत करना (५) जिन दर्शन को अन्य कार्यों की अपेक्षा अधिक महत्व देना (६) पानी के बाहर निकाली हुई मछली के समान जिनदर्शन की तीव्र भावना होना या जिन दर्शन हेतु विशेष छटपटाहट होना।

प्रश्न १०. जिनेन्द्र देव के दर्शन हेतु चलते समय कितनी और कौन-कौन सी बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

उत्तर- जिन दर्शन हेतु चलते समय मार्ग में निम्न पाँच बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है- (१) ईर्यासमिति पूर्वक-चार हाथ जमीन देखते हुए चलें, (२) मौन पूर्वक चलें अर्थात् किसी से वार्तालाप करते हुए न चलें, (३) मन ही मन में जिन स्तुति या महामंत्र पढ़ते हुए चलें। (४) रास्ते में अन्य कार्य न करें, (५) रास्ते में किसी मित्र आदि से चर्चा न करें।

प्रश्न ११. जिन मंदिर में प्रवेश करने के पूर्व द्वार पर ही कितनी और कौन कौन सी बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है ?

उत्तर- जिन मंदिर में प्रवेश करने के पूर्व द्वार पर निम्नलिखित चारों बातों को ध्यान में रखना अत्यावश्यक है-

(१) जूते, चप्पल, मौजे उतार कर ही मंदिर में प्रवेश करें।

(२) चमड़े से निर्मित, बैल्ट, पर्स, कोट आदि पहनें हों तो उसे उतार कर वहीं बाहर रख दें।

(३) हाथ-पाँव धोकर एवं मुख शुद्धि करके ही मंदिर जी में प्रवेश करें।

(४) जिन मंदिर की वंदना, नमस्कार व अर्घ सर्मपण करके ही जिन मंदिर में प्रवेश करें। संभव हो सके तो जिन मंदिर की परिक्रमा लगाने के उपरान्त मंदिर जी में प्रवेश करें।

प्रश्न १२. मंदिर जी में प्रवेश करते समय कितनी और कौन-कौन सी बातों को ध्यान में रखना अत्यावश्यक है ?

उत्तर- मंदिर जी में प्रवेश करते समय निम्नांकित तीन बातों को ध्यान में रखना अत्यावश्यक है -

(१) मन, वचन, काय, वस्त्र व पूजन की द्रव्य इन सबकी शुद्धि के साथ ही जिन मंदिर में प्रवेश करें।

(२) जब तक मंदिर में रहेंगे तब तक मन, वचन, काय की असद्वृत्तियों के त्याग का संकल्प लेते हुए मंदिर जी में प्रवेश करें।

(३) शरीर के आठों अंगों को नम्रीभूत करते हुए एवं जिन मंदिर जी की देहरी का वन्दन, स्पर्शन करते हुए मंदिर जी में प्रवेश करें।

प्रश्न १३. जिन मंदिर जी में प्रवेश करते हुए और क्या-क्या करना चाहिए ?

उत्तर- जिन मंदिर जी में प्रवेश करते हुए-(१) ॐ जय (तीन बार)....ॐ नमोस्तु...३ (तीन बार) एवं निःसहि ३ (तीन बार) बोलते हुए प्रवेश करें।

(२) परम आनन्दित होते हुए तीन बार मध्यम ध्वनि से घंटा बजायें।

प्रश्न १४. ॐ जय- जय-जय का क्या अर्थ है तथा तीन बार ही क्यों बोलना चाहिए ?

उत्तर- "ॐ" पंच परमेष्ठी का वाचक है, अत: पंच परमेष्ठी की जय हो तथा तीन बार बोलने का आशय है, मन से जयकार करना, वचन से जयकार करना एवं काय से जयकार करना। जिन भक्त पंच परमेष्ठी का ही अनन्यतम / परम भक्त होता है।

प्रश्न १५. नमोस्तु शब्द का क्या अभिप्राय है तथा तीन बार ही क्यों करनी चाहिए ?

उत्तर- "नमोस्तु" शब्द का अर्थ होता है-नमस्कार करना, अपना सर्वस्व जिनेन्द्र भगवान के चरणों में सौंप देना, तीन बार नमस्कार करने का आशय है, मन से वचन से एवं काय से नमस्कार करना।

प्रश्न १६. निःसहि शब्द का क्या अर्थ है तथा यह तीन बार क्यों बोलना चाहिए?

उत्तर- "नि:सहि" शब्द बीजाक्षर के रूप में प्रयुक्त है; इसका आशय है, "हमें स्थान दे दो", जिनेन्द्र

भगवान के मंदिर में यहाँ तीन गति के जीव आ सकते हैं, मनुष्य, तिर्यंच एवं देव। मनुष्य व तिर्यंचों का शरीर औदारिक होता है, अतएव उन्हें देखकर उनसे बचा जा सकता है जिससे उन्हें कष्ट नहीं हो, किन्तु देवों का शरीर वैक्रियक होता है, वे अदृश्य रूप में भी जिन मंदिर में दर्शन, पूजन, वंदना हेतु आ सकते या आते हैं, हमारे द्वारा उन्हें कोई बाधा न पहुँचे, वे एक तरफ होकर हमें स्थान दे दें। इसलिए मंदिर में प्रवेश करते समय या किसी सुनसान जंगल में प्रवेश करते समय, लघु शंका व दीर्घ शंका के समय "निःसहि" शब्द का प्रयोग किया जाता है। तीन बार बोलने का अभिप्राय है, वर्तमान काल में आते हुए देव से, भूतकाल में यानि पहले से विद्यमान देव से एवं भविष्यकाल में आने वाले देव से स्थान मांगना।

प्रश्न १७. जिन मन्दिर में कितने दोषों (आसादनाओं) को टाल कर देव दर्शन या जिनेन्द्र देव की पूजन करनी चाहिए?

उत्तर– जिन मन्दिर में मन, वचन, काय की कोई भी असद्/खोटी चेष्टा या प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए तथा आगम में वर्णित ८४ (चौरासी) दोषों या आसादनाओं को टाल कर ही देव दर्शन या जिनेन्द्र देव की पूजन करनी चाहिए। ८४ आसादनाओं को आगे कहेंगे यहाँ विस्तार के भय से नहीं लिख रहे हैं।

प्रश्न १८. घण्टा क्यों बजाना चाहिए ?

उत्तर–

१. घण्टा के माध्यम से मंगल ध्वनि निसृत होती है, जिससे अन्तर्जल्पों व विकल्पों का शमन होता है, मन परम आह्लादित हो जाता है। –

२. घण्टा के मंगल नाद को सुनकर अपने मंदिर जाने के नियम को विस्मृत पुरुष भी अपना नियम स्मरण कर उसका पालन कर सकते हैं।

३. निकटतम यदि कोई मरणासन्न जीव हो तो वह उस ध्वनि को सुनकर धर्म का स्मरण कर अपना कल्याण कर सकता है। परमात्मा की शरण को प्राप्त हो सकता है। घंटा बजाने का मंगलनाद (घंटे की मंगल ध्वनि) पोले शिखर व कलश से बाहर जब निकलती है तब ध्वजा के माध्यम से दशों दिशाओं में मंगल नाद (ध्वनि) वहाँ के वातावरण को मंगलमय कर देता है ।

४. घंटे की मंगल ध्वनि को सुनकर भव्य जीव धर्म का स्मरण कर अपना हित कर सकता है।

५. घंटे की मंगल ध्वनि सुनकर अपरिचित व्यक्ति भी यह ज्ञात कर सकता है कि यहाँ मंदिर है, वहाँ जाकर दर्शन पूजन कर पुण्यार्जन कर सकता है। इत्यादि अनेकों घंटा बजाने के कारण हो सकते हैं।

प्रश्न १९. घंटा कैसे बजाना चाहिए ?

उत्तर– घंटा मध्यम ध्वनि से (न अति तीव्रता से, न अति मंद ध्वनि में) बजाना चाहिए, जिससे अन्य धर्मार्थी, दर्शनार्थी, पूजार्थी को व्यवधान न हो और इतने धीमे भी न बजाएँ कि स्वयं के कान भी न सुन पायें।

प्रश्न २०. क्या घंटा भगवान को जगाने के लिए बजाया जाता है ?

उत्तर– नहीं ! घंटा भगवान को जगाने के लिए नहीं अपितु, अपनी एवं अन्य साधर्मी जनों की सोई हुई चेतना को जगाने के लिए बजाया जाता है।

प्रश्न २१. इसके उपरान्त मंदिर में जाकर क्या करना चाहिए ?

उत्तर– इसके उपरान्त मंदिर जाते ही वेदी की तीन परिक्रमा लगानी चाहिए। परिक्रमा सीधी लगानी चाहिए। कम से कम तीन और अधिकतम १००८ तक भी लगा सकते हैं। सीधी परिक्रमा (प्रदक्षिणा) का आशय है, भगवान के सामने खड़े हों तो वहाँ से (मध्य स्थान से) अपने बाँयें हाथ की ओर (भगवान के दायें हाथ की ओर) चलें, पुनः पीछे, पुनः अपने दाँये हाथ की ओर बढ़ते जायें।

प्रश्न २२. परिक्रमा (प्रदक्षिणा) किसे कहते हैं एवं कम से कम तीन क्यों लगाना चाहिए?

उत्तर– परिक्रमा (प्रदक्षिणा) का अर्थ है भगवान की वेदी के तीन चक्कर लगाना। तीन परिक्रमा लगाने का रहस्य है कि हे प्रभो तीनों लोकों में भ्रमण करके आपके चरण सान्निध्य में आ गया हूँ, तीनों लोकों में आपके समान पतितोद्धारक दूसरा नहीं है, दुनियाँ में अब तक और सब देव तो मिथ्या या मिथ्यात्व के पोषक ही मिले, आप जैसे वीतरागी प्रभू को प्राप्त कर मैं जन्म, जरा, मृत्यु जैसे महारोगों से मुक्त होना चाहता हूँ। इस आशय से तीन परिक्रमा लगाना चाहिए।

प्रश्न २३. परिक्रमा तीन से कम या ज्यादा क्यों नहीं लगानी चाहिए ?

उत्तर– परिक्रमा तीन से कम नहीं, अधिक तो लगा सकते हैं, कम इसलिए नहीं लगाना चाहिए क्यों कि तीन से कम परिक्रमा– लगाने से पुण्य क्षीण होता है। अधूरी भक्ति सातिशय पुण्य को पूर्ण रूप में नहीं दे सकती, अतः परिक्रमा पूरी (कम से कम तीन) लगानी चाहिए। नीतिकार कहते हैं कि किसी अतिथि को आधा पेट भोजन कराना, एक हाथ उठाकर जय जिनेन्द्र (जुहार) करना एवं एक या दो परिक्रमा लगाना ये पुण्य को क्षय करने वाले कारण हैं अर्थात् अधूरे काम नहीं अपितु, पूरे काम करना चाहिए। अतिथि को पूर्णोदर (भरपेट) भोजन करायें, दोनों हाथों को जोड़कर जय जिनेन्द्र करें एवं मंदिर जी या वेदी जी की कम से कम तीन परिक्रमा लगायें।

प्रश्न २४. अधिकतम परिक्रमा किस उद्देश्य से लगायी जाती है ? तथा कितनी–कितनी परिक्रमा किन–किन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु लगायें ?

उत्तर– परिक्रमा ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५,..... २१, २७, ५४,८१, १०८..... १००८ तक लगा सकते हैं, उद्देश्य ये रखे जा सकते हैं– रत्नत्रय की प्राप्ति, पंचमगति की प्राप्ति, सप्तम तत्व, नव पदार्थों में श्रेष्ठ मोक्ष पदार्थ की प्राप्ति या नव नोकर्मों का अंत, ग्यारह प्रतिमा, तेरह प्रकार के चारित्र की प्राप्ति, पन्द्रह प्रमादों से मुक्ति, इक्कीस गुणों की प्राप्ति..... एकसौ आठ श्रमण गुणों की या एक हजार आठ जिनेन्द्र गुणों की प्राप्ति के लिए भी परिक्रमा लगायी जाती है।

प्रश्न २५. परिक्रमा लगाने के बाद पुनः क्या करना चाहिए ?

उत्तर– परिक्रमा लगाने के बाद वेदी के सामने खड़े होकर भगवान के सामने मंगल छंद/काव्य बोलते हुए पाँच पुँज से द्रव्य (चावल, रत्न, फल आदि) चढ़ानी चाहिए, पुनः एक तरफ खड़े होकर जिनेन्द्र भगवान की स्तुति, भक्ति, वंदना, पूजनादि करना चाहिए।

प्रश्न २६. देव दर्शन करते समय पाँच ढेली से पुंज क्यों चढ़ाना चाहिए ?

उत्तर– पाँच ढेली से पुंज चढ़ाने का भाव है, पाँचों परमेष्ठियों को अथवा जिनेन्द्र भगवान के पाँचों कल्याणकों के लिए अर्घ चढ़ाना एवं द्रव्य के पाँच पुंज चढ़ाने का उद्देश्य पंच परमेष्ठियाँ की अवस्था की प्राप्ति, पंचम गति व पंच कल्याणकों की प्राप्ति मुझे भी हो।

प्रश्न २७. स्तुति, भक्ति, वंदना एवं पूजन का आशय क्या है ? संक्षिप्त अर्थ बताने की कृपा करें।

उत्तर– उक्त चारों शब्दों के संक्षिप्त अर्थ निम्नांकित हैं –

(१) स्तुति– किसी के अल्प गुणों को वृद्धिंगत करके (बढ़ा–चढ़ाकर) कहना स्तुति कहलाती है।

(२) भक्ति– पंच परमेष्ठी आदि पूज्य पुरुषों के गुणों में अनुराग रखते हुए गुणोत्कीर्तन करना भक्ति कहलाती है।

(३) वंदना– किसी एक तीर्थंकर या परमेष्ठी की प्रधानता से गुणगान करना।

(४) पूजन– जिनेन्द्र भगवान के गुणों को प्राप्त करने के लिए अष्ट द्रव्य से अर्चना करना ही पूजन कहलाती है, अर्घ चढ़ाना भी लघु पूजन है।

प्रश्न २८. इसके उपरान्त क्या करना चाहिए ?

उत्तर– स्तुति आदि पढ़ने के उपरान्त कम से कम ५ मिनट तक भगवान की वीतरागी मुद्रा को एक टक से निहारना चाहिए, मूर्ति में मूर्तिमान स्वरूप के दर्शन करना चाहिए, जिनेन्द्र देव दर्शन ही निज दर्शन के कारण होते हैं।

प्रश्न २९. जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति के (साक्षात् जिनेन्द्र भगवान मानते हुए) किन – किन अंगों व उपांगों को, क्यों देखना चाहिए?

उत्तर– जिनेन्द्र देव के दर्शन करते समय मस्तिष्क, नेत्र, मुख कमल, वक्ष स्थल, नाभि आदि स्थानों को एक टक से देखना चाहिए। मस्तिष्क को देखते हुए अनन्तज्ञान, नेत्र देखते हुए अनंत दर्शन, मुख कमल देखते हुए अनन्त सुख, वक्षस्थल देखते हुए अनन्तबल एवं नाभि को देखते हुए अनन्त गुणों को प्राप्त करने की भावना भानी चाहिए।

प्रश्न ३०. जिन दर्शन की सार्थकता किस प्रकार है ?

उत्तर– जिन दर्शन की सार्थकता जिन दर्शन अर्थात् निज स्वरूप के ज्ञान, श्रद्धान होने से है अन्यथा जिन दर्शन पूर्ण सार्थकता को प्राप्त नहीं होता। कहा भी है –

जिन दर्शन से निज दर्शन है, निज दर्शन है तो दर्शन है।

जिन दर्शन से निज दर्शन ना, वह दर्शन नहीं प्रदर्शन है।।

प्रश्न ३१. जिन दर्शन के बाद फिर क्या करना चाहिए ?

उत्तर– जिन दर्शन के बाद पुनः कम से कम एक कायोत्सर्ग करना चाहिए, पुनः जमीन पर गवासन से बैठकर मस्तिष्क से भूमि का स्पर्श करते हुए नमस्कार करना चाहिए।

प्रश्न ३२. कायोत्सर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर– काय का अर्थ है "शरीर" , उत्सर्ग का अर्थ है "छोड़ना", दोनों का अर्थ हुआ "शरीर को छोड़ना"। किन्तु शरीर छोड़ने का यहाँ आशय है "शरीर से ममत्वभाव छोड़ना" जब तक नौ बार पंच नमस्कार मंत्र जपें तब तक शरीर से ममत्व छोड़ना ही **कायोत्सर्ग** कहलाता है।

प्रश्न ३३. नमस्कार किस आसन से करना चाहिए?

उत्तर– नमस्कार पंचांग, अष्टांग/साष्टांग या गवासनसे करना चाहिये, महिलाओं को तो सदैव गवासन से ही नमस्कार करना चाहिए, पुरुष उक्त अन्य आसनों से भी कर सकते हैं किन्तु, गवासन से नमस्कार करना सर्वोत्तम है, नमस्कार खड़े–खड़े नहीं करना चाहिए क्योंकि, खड़े–खड़े नमस्कार करने से भगवान की अविनय होती है।

प्रश्न ३४. गवासन से नमस्कार कैसे किया जाता है तथा यह आसन श्रेष्ठ क्यों हैं ?

उत्तर– बांया पैर नीचे व दाँयाँ पैर उसके ऊपर रखते हुए गाय की तरह बैठकर, दोनों हाथों को कमल की कली की तरह जोड़ कर आगे बढ़ाते हुए मस्तिष्क से भूमि का स्पर्श करते हुए नमस्कार करना ही गवासन से नमस्कार करना कहलाता है, इस आसन से सभी अंग नम्रीभूत हो जाते हैं इसलिए यह आसन सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

प्रश्न ३५. इसके उपरान्त गन्धोदक लगाते समय कौन–सा मंत्र बोलें एवं गंधोदक कैसे और कहाँ–कहाँ लगाना चाहिए?

उत्तर– गन्धोदक लेते समय निम्नलिखित छंद बोल सकते हैं

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पाप नाशकम् ।
जिन गंधोदकं वन्दे, कर्माष्टक विनाशकम् ।।

गंधोदक जिनराज का, गुण से भरा अनेक ।
जो इसका सेवन करे, दुःख रहे ना एक ।।
दुःख रहे ना एक, कोढ़ी निशदिन इसे लगावे ।
इसे लगाने वाले का तन, मन निर्मल हो जावे ।।

गंधोदक विनय पूर्व लेना चाहिए एवं उत्तमांगों में लगाना चाहिए।

प्रश्न ३६. गन्धोदक किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किये हुए अभिषिक्त जल को गंधोदक (सुगंधित जल / परम पावन जल) कहते हैं।

प्रश्न ३७. जिनवाणी के दर्शन करते समय कितनी ढेली से चावल चढ़ायें तथा क्यों?

उत्तर– जिनवाणी के दर्शन करते समय ४ ढेली से पुंज चढाना चाहिए क्योंकि, जिनवाणी चार भागों में विभक्त है, उन चारों अनुयोगों का पूर्ण ज्ञान हमें प्राप्त हो। जिनवाणी जी की पुनः स्तुति करें, कायोत्सर्ग करें, गवासन से नमस्कार करें और विनय पूर्वक शास्त्र जी को चौकी पर विराजमान कर स्वाध्याय भी करना चाहिये अथवा सुनना चाहिए।

प्रश्न ३८. अनुयोग किसे कहते हैं ? वे कौन–कौन से हैं, नाम बताएं ?

उत्तर– धर्म के किसी भी विषय का क्रमबद्ध विवेचन जिसमें हो उसे अनुयोग कहते हैं। वे अनुयोग चार हैं– (१) प्रथमानुयोग (२) करणानुयोग (३) चरणानुयोग (४) द्रव्यानुयोग।

प्रश्न ३९. इन चारों अनुयोगों में किस–किस विषय का प्रतिपादन किया गया है ? संक्षेप में बताने की कृपा करें।

उत्तर– उपरोक्त चारों अनुयोगों में क्रमशः निम्नांकित विषय प्रतिपादित हैं –

(१) **प्रथमानुयोग–** इस अनुयोग में तिरेसठ शलाका पुरुषों (२४ तीर्थकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र) का जीवन चरित्र एवं अन्य महापुरुषों का जीवन चरित्र तथा उनसे सम्बन्धित बोधप्रद कथाएँ प्रतिपादित हैं। आदि पुराण, उत्तर पुराण, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण

सिरि सीयलणाह चरियं आदि इस अनुयोग के ग्रंथ हैं।

(२) **करणानुयोग–** इस अनुयोग में करण अर्थात् परिणामों का, तीन लोक का, जीव का ३४ स्थानों की अपेक्षा कथन किया गया है । इस अनुयोग में त्रिलोक सार, त्रिलोक प्रज्ञप्ति, गोमट्टसार, क्षपणासार, लब्धिसार, षट्खंण्डागम, कषाय पाहुड, कम्मसहावो, कम्मपहावो आदि ग्रंथ प्रमुख हैं ।

(३) **चरणानुयोग–** इस अनुयोग में चारित्र का कथन किया है, चारित्र के मुख्य दो भेद हैं, देश चारित्र व सकल चारित्र। देश चारित्र का पालन श्रावक करते हैं एवं सकल चारित्र का पालन श्रमण करते हैं। देश चारित्र का कथन करने वाले ग्रंथ श्रावकाचार कहलाते हैं–जैसे–रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पूज्यपाद श्रावकाचार, उमास्वामी श्रावकाचार, वसुनंदि श्रावकाचार, अमित गति श्रावकाचार, पुरुषार्थ सिद्धियुपाय, विद्यावसु श्रावकाचार इत्यादि एवं श्रमण धर्म के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं– मूलाचार, मूलाचार प्रदीप, भगवती आराधना, मूलाराधना, आचारसार, अनगार धर्मामृत, प्रवचनसार समणायारो आदि।

(४) **द्रव्यानुयोग–** जिसमें (द्रव्यों का) आत्मादि का शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से कथन किया जाता है, वह द्रव्यानुयोग कहलाता है। इस अनुयोग में द्रव्य संग्रह, परमात्म प्रकाश, पंचास्तिकाय, नियमसार, समयसार, अप्पसत्ती, अप्पविहवो, सुद्धप्पा आदि ग्रंथ प्रतिपादित हैं।

प्रश्न ४०. जिनवाणी के दर्शनोपरान्त गुरु के दर्शन करते समय कितनी ढेली से पुंज चढ़ाना चाहिए और क्यों?

उत्तर– जिनवाणी के दर्शनोपरान्त गुरु के दर्शन करते समय तीन ढेली से पुंज चढ़ाना चाहिए क्योंकि, साधु (गुरुदेव) रत्नत्रय की साक्षात् मूर्ति होते हैं, अतः रत्नत्रय धर्म (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र) हमें भी प्राप्त हो, इस भावना से तीन ढेली से पुंज चढ़ाना चाहिए।

प्रश्न ४१. गुरु दर्शन के उपरान्त पुनः क्या करना चाहिए ?

उत्तर– गुरु दर्शन के उपरान्त गुरु स्तुति पढ़ना चाहिये, पुनः कायोत्सर्ग करके गवासन से बैठकर नमस्कार करें, उपदेश / प्रवचन होते हों तो वह भी सुनना चाहिए। इसके उपरान्त गुरुदेव की सेवा वैय्यावृत्ति करके प्रस्थान करना चाहिए।

प्रश्न ४२. गुरु दर्शन एवं भक्ति की क्या महिमा है ? संक्षेप में बताने की कृपा करें?

उत्तर–

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।

कालेन फलते तीर्थं, सद्य साधु समागमः।।

अर्थ– साधुओं का दर्शन पुण्य से पुण्य के लिए ही होता है, साधु ही साक्षात् चल चेतन तीर्थ हैं, अचेतन तीर्थ तो समय आने पर फल देते हैं किन्तु, साधु के माध्यम से, समागम होते ही, सानिध्य प्राप्त करते ही सुफल की प्राप्ति होती है।

गुरू भक्ति सती मुक्त्यै, क्षुद्रं किं वा न साधयेत्।

त्रिलोकी मूल्य रत्नेन, दुर्लभः किं तुषोत्करः।।

अर्थ– जो गुरू भक्ति मुक्ति के लिए कारण होती है, क्या वह क्षुद्र इच्छाओं की पूर्ति नहीं करेगी? अर्थात् अवश्य करेगी। तीन लोक में श्रेष्ठ रत्न की प्राप्ति जहाँ से हो सकती है, तो क्या वहाँ से तुष (भूषा) प्राप्त करना दुर्लभ है? अर्थात् नहीं।

प्रश्न ४३. जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से क्या फल प्राप्त होता है ?

उत्तर– **दर्शनेन जिनेन्द्राणां, पाप संघात कुंजरम्।**

शतधा भेदमायाति, गिरि वज्रो हतो यथा।।ध० पु।।

अर्थ– जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से पाप समूह रूपी हाथी (कर्म रूपी पर्वत) उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वज्र के द्वारा पर्वत चूर-चूर हो जाता है।

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पाप नाशनम्।

दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनम्।।दे. द. स्तु.।।

अर्थ– देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान के दर्शन पापों को नष्ट करने वाले हैं तथा देव दर्शन स्वर्ग की सीढ़ियां हैं एवं दर्शन ही मोक्ष का साधन है।

प्रश्न ४४. जिनेन्द्र देव के दर्शन का चिंतन करने से, मार्ग में चलने से या मंदिर जी में प्रवेश करने पर भी क्या कुछ फल की प्राप्ति होती है?

उत्तर– **जब चिंतो तव सहस फल, लक्खा फल गमणे य।**

कोड़ा – कोड़ी अणंत फल, जब जिणवर दिट्ठेय ।।

अर्थ– जिनेन्द्र भगवान के दर्शन हेतु चिंतन करने से एक हजार उपवास, विधि पूर्वक मार्ग में गमन करने से एक लाख उपवास, मंदिर जी के द्वार पर पहुंचकर मंदिर जी में प्रवेश करते समय कोड़ा-कोड़ि उपवास एवं श्रद्धा भक्ति व सर्मपण के साथ जिन दर्शन करने से अनंत उपवास के बराबर फल प्राप्त होता है। जैसे-राजा श्रेणिक के हाथी के पैर के नीचे दब कर मरने वाला मेंढ़क (जिनेन्द्र भगवान के दर्शन के भाव से मार्ग में गमन करने वाला) देव गति को प्राप्त हुआ।

प्रश्न ४५. क्या जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने के लिए कभी खाली हाथ भी आ सकते हैं ? यदि हाँ तो

कब ? नहीं तो क्यों नहीं ?

उत्तर– जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने के लिए सामान्यतया खाली हाथ नहीं आना चाहिए। हाँ ! घर में सूतक, पातक, अशुद्धि है अथवा कहीं बाहर से आने पर अकस्मात् कहीं दर्शन हो जायें अथवा गृह त्यागी / सर्वस्व त्यागी बन जाने पर बिना कुछ चढ़ाये भी दर्शन कर सकते हैं। अन्य समय में खाली हाथ दर्शन नहीं करना चाहिए, अन्यथा रिक्त हस्त ही रह जाते हैं अर्थात् उसका समीचीन व पूर्ण फल प्राप्त नहीं होता।

प्रश्न ४६. मंदिर में दर्शन करने के लिए आते समय चढ़ाने के लिए चावलों को ही लाया जाता है ? क्या अन्य वस्तु भी चढ़ा सकते हैं ?

उत्तर– जिन मंदिर जी में दर्शन करते समय चावल इसलिए चढ़ाये जाते हैं क्योंकि चावलों में पुनः उत्पन्न होने की क्षमता नहीं होती। उसी प्रकार की अवस्था (पुनः संसार में जन्म न हो ऐसी अवस्था) भक्त भी चाहता है। चावल दोनों प्रकार के छिलकों व पलाल से रहित होते हैं उसी प्रकार भक्त (जिन देव दर्शनार्थी) भी चाहता है कि मैं द्रव्य कर्म, भाव कर्म व नो कर्म से रहित हो जाऊँ। यदि चावल चढ़ाने की सामर्थ नहीं है तो अन्य शुद्ध, प्रासुक व मर्यादित वस्तु, जल, चंदन व अन्य धान्य आदि फल, सूखे या गीले (शुचि, सरस, मधुर, सुगंधित, मनोहर) फल भी चढ़ाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त मूंगा, मोती, हीरा, माणिक, पन्ना, प्रवाल, स्फटिक, उपरत्न, रत्न या स्वर्ण रजत के पुष्प भी चढ़ाये जा सकते हैं। यदि इतनी सामर्थ्य न हो तो कम से बारह (१२) चावल अवश्य लेकर आयें, जिनमें से – पांच (५) चावल भगवान के सामने, चार (४) जिनवाणी के सामने एवं तीन (३) गुरुओं के सामने चढ़ाकर दर्शन करना चाहिए।

प्रश्न ४७. जिनेन्द्र देव के दर्शनहेतु आते समय किस प्रकार स्नान करें एवं कैसे वस्त्र पहनकर व किस प्रकार की सामग्री लेकर आना चाहिए?

उत्तर– जिनेन्द्र देव के दर्शन हेतु आते समय स्नान चर्बी रहित शुद्ध साबुन से करें तथा छने पानी का प्रयोग करें, अनावश्यक पानी न फैलायें अर्थात् पानी का उपयोग दूध, घी, तेल की तरह मितव्ययता से करना चाहिए। चर्बी युक्त साबुन से स्नान करने पर भी अशुद्ध कहलायेंगे। वस्त्र शुद्ध, स्वच्छ, भारतीय संस्कृति के अनुकूल, आर्यभेष हो, वस्त्र जाली– दार, अति पतले, अपूर्ण न हों जिनसे स्व–पर के परिणाम विकृत हों या आंगोपांग दिखे एवं अशुद्ध पदार्थों (लिपिस्टिक, क्रीम, पाउडर, शैम्पो) का प्रयोग कर मंदिर में प्रवेश न करें अन्यथा आपके माध्यम से मंदिर की पवित्रता में भी अंतर आ सकता है।

पूजन की द्रव्य (सामग्री जो देव दर्शन हेतु ले जा रहे हैं) अत्यंत विशुद्ध एवं विशुद्धि की जनक हो, लोक व्यवहार के विरूद्ध, सड़ी–गली, अल्प मूल्य वाली न हो अन्यथा परिणाम विशुद्धि

के स्थान पर संक्लेशता की उत्पादक होगी।

प्रश्न ४८. देव किसे कहते हैं, देव शब्द के क्या–क्या अर्थ हैं एवं यहाँ पर देव शब्द का आशय क्या है ?

उत्तर– देव शब्द, दिव्यता व श्रेष्ठता का प्रतीक है, देव शब्द परमात्मा के लिए प्रयुक्त है। देव शब्द के अर्थ–देव गति के समस्त पुरुषवेदी, पूज्य, स्वामी, त्राता, इष्ट, आदि हैं, यहाँ देव शब्द का अर्थ, वीतरागी, सर्वज्ञ हितोपदेशी अरिहंत व सिद्ध परमेष्ठी के रूप में ग्रहण किया है अथवा जिनदेव, श्रुतदेव व गुरुदेव अर्थ भी ग्राह्य हैं।

प्रश्न ४९. वीतरागी, सर्वज्ञ, व हितोपदेशी का आशय क्या है ?

उत्तर– **वीतरागी–** जो राग द्वेषादि अट्ठारह दोषों से रहित होते हैं वे वीतरागी कहलाते हैं। एक देश वीतरागता का प्रारंभ सातवें गुणस्थान से होता है, सकल वीतरागता का प्रारंभ ग्यारहवें (उपशम की अपेक्षा) अथवा बारहवें (क्षीण मोह/मोह को क्षय करने की अपेक्षा) गुणस्थान से होता है। ग्यारहवें एवं बारहवें गुणस्थान वाले वीतरागी छद्मस्थ कहलाते हैं एवं तेरहवें गुणस्थान वाले (सयोग केवली) व चौदहवें गुण स्थान वाले (अयोग केवली) व सिद्ध वीतरागी, सर्वज्ञ व मुक्त जीव कहलाते हैं।

सर्वज्ञ– जो तीन लोकों व अलोकाकाश में विद्यमान त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य, गुण, पर्यायों को एक साथ जानते हैं वे सर्वज्ञ कहलाते हैं, जो सर्वज्ञ होते हैं वे ही नियम से सर्वदर्शी भी होते हैं।

हितोपदेशी– जो संसार के समस्त भव्य जीवों को बिना किसी इच्छा / राग के मोक्ष का स्वरूप / आत्म कल्याण का मार्ग दर्शाते हैं, परम हित का उपदेश देते हैं वे परम हितोपदेशी कहलाते हैं।

प्रश्न ५०. जिनेन्द्र भगवान के दर्शनोपरान्त मंदिर से किस प्रकार लौटें, उस समय क्या कहना चाहिए व कैसी भावना भानी चाहिए?

उत्तर– जिनेन्द्र भगवान के दर्शनोपरान्त, (उस मंदिर में विद्यमान सभी जिनबिम्बों तथा वेदीयों के, शास्त्रों के व गुरुजनों के दर्शनोपरान्त) लौटते यह ध्यान रखें कि पीठ देकर के न निकलें तथा लौटते समय अस्सहिः शब्द का प्रयोग तीन बार करना चाहिए, इसका अर्थ होता है, जिन देवगति के देवों ने मुझे दर्शन हेतु स्थान दिया अब वे यथास्थान दर्शन पूजन करें, मैं अब प्रस्थान करता हूँ, आपका स्थान आपको सौंपता हूँ। जिन मंदिर जी से लौटते समय " **भूयात् पुनर्दर्शनं** " अर्थात् हे भगवान ! आपके दर्शन हमें पुनः–पुनः हर समय, प्रत्येक भव में होते रहें, जब तक कि हम स्वयं आपके समान न बन जावें, तब तक हमारा मन आपके चरण

कमलों में व आपके चरण कमल मेरे हृदय में कीलितवत् स्थायी बने रहें।

******

विज्जत्थी हु गुणांकखी, उप्पाहारी णि रालसो ।
विण्यी बंभचारी य, वेग्गिओ परिस्समी ।। ४५ ।।

विद्यार्थी गुणाकांक्षी, अल्पाहारी, आलस्य रहित, विनयी, ब्रह्मचारी, वैराग्ययुक्त और परिश्रमी हो ।

रट्ठसंति-महाजण्णो (राष्ट्रशांति महायज्ञ) - ४५
(आ. वसुनंदी मुनि)

कब न करें भोजन ?

उग्ग-कसायस्सुदये, णो जदा होदि सद्दभावो तदा ।
संकिलेस-परिणामे, वेरे कलहासुहभावेसु ।। ४१ ।।

उग्र कसाय के उदय में, जब रुद्रभाव होता है तब, संक्लेश परिणाम में, वैर और कलह आदि अशुभ भावों में भोजन नहीं करना चहिए ।

अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार) - ४१
(आ. वसुनंदी मुनि)

अध्याय-१०

जैन-श्रावकः

प्रश्न १. जैन किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रतिपादित मार्ग का जो भव्य जीव अनुकरण / अनुशरण करते हैं, उन्हें जैन कहते हैं अथवा जिनेन्द्र भगवान के अनुयायी को **जैन** कहते हैं।

प्रश्न २. जिनेन्द्र भगवान किन्हें कहते हैं ?

उत्तर- वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी भगवान को ही जिनेन्द्र भगवान कहते हैं अथवा जिन्होंने इन्द्रियों को, कर्मों को या निजात्मा को जीत लिया है उन्हें **जिनेन्द्र भगवान** कहते हैं।

प्रश्न ३. वीतरागी किन्हें कहते हैं ?

उत्तर- जो राग-द्वेष आदि अट्ठारह दोषों से रहित हैं ऐसे भगवान को ही **वीतरागी** देव कहते हैं।

प्रश्न ४. सर्वज्ञ किन्हें कहते हैं ?

उत्तर- जो तीन लोक एवं अलोकाकाश सम्बन्धी समस्त द्रव्य एवं उनके अनन्तानंत गुण व उनकी त्रिकालवर्ती अनन्तानन्त पर्यायों को एक साथ जानते हैं उन्हें **सर्वज्ञ** कहते हैं।

प्रश्न ५. हितोपदेशी किसे कहते हैं ?

उत्तर- जो बिना किसी स्वार्थ के संसार के भव्य जीवों को कल्याण मार्ग का उपदेश देते हैं अथवा जिनकी दिव्य ध्वनि सर्वांग से सहज रूप में भव्य जीवों के पुण्यसे खिरती है, जो प्राणी मात्र का कल्याण करने वाली होती है, अतः ऐसे कल्याणकारी निस्पृह उपदेशक को **हितोपदेशी** कहते हैं।

प्रश्न ६. श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर- जो समीचीन श्रद्धावान, विवेकवान एवं क्रियावान होता है, उसे श्रावक कहते हैं अथवा जो सच्चे देव, शास्त्र व निग्रंथ गुरुओं की वाणी को, धर्मोपदेश को श्रद्धा यानि समीचीन विश्वास से युक्त होकर सुनता है, उसे ग्रहण करता है उसे **श्रावक** कहते हैं।

प्रश्न ७. जैन के मुख्य लक्षण कितने होते हैं और वे कौन-कौन से हैं ? समझाने की कृपा करें ?

उत्तर- जैनों के मुख्यतया तीन लक्षण हैं, जो सर्व सामान्य में भी प्रसिद्ध है, प्राय: जैनेतर लोग भी इन तीन लक्षणों को देख जैनों की पहचान कर लेते हैं। वे तीन लक्षण निम्न हैं- (१) रात्रि

में भोजन नहीं करना (२) छान कर पानी पीना (३) नित्य जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करना।

प्रश्न ८. जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित मार्ग क्या है, जिसका जैन लोग अनुकरण करते हैं ?

उत्तर– जिनेन्द्र भगवान द्वारा वीतरागता का मार्ग प्रतिपादित है, इस धर्म में अहिंसा की मुख्यता है, अन्य ४ सिद्धान्त भी इसी का पोषण करने वाले हैं। **यथा**–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह या संक्षेप में वीर प्रभू का दिव्य उपदेश यही है "जीओ और जीने दो"।

प्रश्न ९. श्रावक का यथार्थ स्वरूप क्या है, समझाने की कृपा करें ?

उत्तर– जो भव्य जीव समीचीन श्रद्धा, विवेक व शुद्ध व्रतों से (सद् क्रियाओं) युक्त सप्त व्यसन का त्यागी हो, अष्ट मूलगुणों से सहित हो, श्रावक के षडावश्यक कर्तव्यों का पालन करने वाला हो, वही यथार्थ में श्रावक कहलाता है।

प्रश्न १०. समीचीन श्रद्धा किसे कहते हैं ?

उत्तर– सच्चे देव, शास्त्र, गुरू व जिनधर्म पर यथार्थ विश्वास रखना, अपनी आत्मा के प्रति रूचि रखना, सात तत्वों के यथार्थ श्रद्धान को ही समीचीन श्रद्धा कहते हैं।

प्रश्न ११. समीचीन विवेक किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो हित की प्राप्ति व अहित का परिहार करने में समर्थ होता है, जिसका फल वैराग्य व संयम हो, जो समीचीन श्रद्धान के साथ रहे उसे ही सच्चा विवेक या सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न १२. सद्व्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर– समीचीन क्रियाओं या व्रतों को ही सद्व्रत कहते हैं, श्रावकोचित धार्मिक क्रिया का पालन करना ही क्रियावान या सद्व्रती कहलाता है।

प्रश्न १३. व्यसन किसे कहते हैं ?

उत्तर– व्यसन का अर्थ है "आदत"। आदत अच्छी बुरी दोनों प्रकार की हो सकती हैं, बुरी आदतों को कुव्यसन या दुर्व्यसन कहते हैं किन्तु, वर्तमान काल में व्यसन शब्द भी बुरी आदतों के लिए रूढ़ हो चुका है।

प्रश्न १४. व्यसन के कितने भेद हैं और कौन–कौन से हैं ? नाम बताने की कृपा करें।

उत्तर– व्यसन के अनेक भेद हैं, यहाँ व्यसन का अर्थ बुरी आदतों से है अतः वे व्यसन सात हैं– सप्त व्यसन मानों सातों नरकों में प्रवेश पाने हेतु द्वार के समान हैं। वे सात व्यसन निम्नांकित हैं –

जुआ खेलना, माँस, मद, वेश्या व्यसन शिकार ।
चोरी पर रमणी रमण, सातों व्यसन निवार ।।

प्रश्न १५. सप्त व्यसन के नाम अलग–अलग गिनाएँ ?

उत्तर– १. जुआ खेलना २. माँस ख़ाना, ३. शराब पीना, ४. वेश्या सेवन, ५. शिकार खेलना, ६. चोरी करना, ७. पर स्त्री रमण करना। ये सातों ही व्यसन लोक निन्द्य एवं महापाप के कारण हैं अतः विवेकी श्रावक इनका अवश्य ही त्यागी होता है, इनके त्याग किये बिना किसी व्यक्ति को जैन या श्रावक कहना अनुचित है। (इसका विशेष कथन लेखक की "सप्त अभिशाप" कृति में देखें)

प्रश्न १६. मूल गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर– मूल का अर्थ होता है- जड़, प्रधान, बीज भूत, प्रारम्भिक आधार। गुण का अर्थ है- विशेषताएँ, लक्षण, ध्रौव्यता। मूलगुण का अर्थ हुआ श्रावक के वे गुण जिनके बिना "श्रावक" श्रावक नहीं कहा जा सकता है, उसे जैन कहना भी हास्यास्पद है अथवा श्रावक के बीज भूत गुणों को, जिनके बिना श्रावक की अन्य विशेषताएं या गुण प्राप्त न हों उन्हें मूलगुण कहते हैं।

प्रश्न १७. जो श्रावक के मूल गुणों से रहित है वह किसके समान है ?

उत्तर– जो श्रावक अष्टमूल गुणों से रहित है, वह अजैन के समान है, वह मात्र नाम का जैन है, वास्तविक जैन वही है जो जैनत्व से सहित है। **जैसे–** काष्ठ के हाथी या घोड़ा पर सवारी नहीं कर सकते, मानचित्र में बनी नदी में स्नान नहीं कर सकते तथा कागज पर बने मकान के चित्र में रह नहीं सकते, उसी प्रकार मात्र जैन कुल में जन्म लेने मात्र से जैन नहीं हो सकते। ऐसे व्यक्तियों को अपने नाम के साथ (नाम के बाद में, जैन शब्द के पहले) "अ" अक्षर जोड़ लेना चाहिए, जिससे परम पवित्र जैन धर्म मलिनता को प्राप्त न होवे।

प्रश्न १८. श्रावक के मूल गुण कितने होते हैं ? बताने की कृपा करे।

उत्तर– श्रावक के आठ मूल गुण होते हैं, जो कि विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न प्रकार कहे हैं।

प्रश्न १९. प० पू० आचार्य समंतभद्र स्वामी ने श्रावक के आठ मूल गुण कौन कौन से कहे हैं ?

उत्तर– प० पू० आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी ने रत्न करण्ड श्रावकाचार के अन्तर्गत श्रावक के निम्न आठ मूल गुण कहे हैं- पांच अणुव्रतों का पालन करना एवं तीन मकारों का त्याग करना।

प्रश्न २०. अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर– स्थूल पापों का संकल्प पूर्वक त्याग करना या एक देश अहिंसादि व्रत का पालन करना अणुव्रत कहलाता है।

प्रश्न २१. पाँच अणुव्रत कौन–कौन से हैं ? बताने की कृपा करें।

उत्तर– (१) अहिंसाणुव्रत (२) सत्याणुव्रत (३) अचौर्याणुव्रत (४) ब्रह्मचर्याणुव्रत (५) परिग्रह परिमाणव्रत या अपरिग्रहाणुव्रत।

प्रश्न २२. मकार किसे कहते हैं ? वे तीन मकार कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– "म" वर्ण से प्रारम्भ होने से ये शब्द मकार कहलाते हैं, "म" शब्द से प्रारंभ होने वाले अनेकों शब्द हैं किन्तु मकार शब्द का रूढ़ि अर्थ विशेष शब्दों के लिए हैं, वे तीन शब्द (वस्तुओं के नाम) हैं – (१) मद्य (२) माँस (३) मधु।

प्रश्न २३. आचार्य भगवन् अमृत चन्द्र स्वामी के अनुसार श्रावक के अष्ट मूल गुण कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– पाँच उदम्बर फल एवं तीन मकारों का त्याग (जो ऊपर लिखें जा चुके हैं) करना श्रावक के आठ मूलगुण कहे हैं।

प्रश्न २४. उदम्बर फल किसे कहते हैं और कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– जिन वृक्षों से दूध निकलता है एवं जिनके फलों में संख्यात त्रस जीवों का वास रहता है, वे उदम्बर फल हैं, वे पांच प्रकार के होते हैं– (१) बड़ फल (बरगद का फल) (२) पीपल का फल (३) ऊमर का फल (४) कठूमर का फल (५) पाकर या अंजीर का फल।

प्रश्न २५. सागार धर्मामृत व अन्य आचार्यों के अनुसार श्रावक के अष्ठ मूलगुण कौन–कौन से हैं ?

उत्तर– सागार धर्मामृत व अन्याचार्यों के अनुसार श्रावक के अष्ट मूलगुण निम्नांकित हैं– (१) मद्य त्याग (२) मांस त्याग (३) मधु त्याग (४) पंचोदम्बर फल त्याग (५) रात्रि भोजन त्याग (६) नित्य देव दर्शन करना (७) छना हुआ जल ही प्रयोग करना (८) जीवों पर दया करना।

प्रश्न २६. वर्तमान काल में श्रावक को कौन से आठ मूल गुण का पालन करना अनिवार्य है ?

उत्तर– वर्तमान काल में निम्न मूलगुणों का पालन करना श्रावक के लिए अनिवार्य है– इन आठ मूल गुणों का पालन करने से श्रावक बहुत बड़ी जीव हिंसा से बच जाता है। वे अष्ट मूल गुण निम्न हैं– (१) मंद्य त्याग (२) मांस त्याग (३) मधु त्याग (४) पंचोदम्बर फल त्याग (५) रात्रि भोजन त्याग (६) नित्य देव दर्शन करना (७) छना हुआ जल ही प्रयोग करना (८) जीवों पर (प्राणी मात्र के प्रति) दया करना।

प्रश्न २७. मद्य त्याग से आपका क्या आशय है ?

उत्तर– जो पदार्थ बहु जीव की हिंसा से निर्मित हों, मद / नशा पैदा करने वाले हों, विवेक को नष्ट कर सन्मार्ग से पतित करें, ऐसे सभी आसव (शराब, देशी, विदेशी, रम, वीयर, दारू, इंगलिश) शराबों का एवं शराब से मिश्रित औषधियों का त्याग करना मद्य त्याग कहलाता

है।

प्रश्न २८. माँस त्याग करने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर– दोइन्द्रिय जीव से पंचेन्द्रिय पर्यन्त समस्त औदारिक शरीरधारियों के मृत शरीर या मृत कलेवर की माँस संज्ञा है, अतः त्रस जीवों के शरीर के कलेवर का त्याग करना तथा किसी पदार्थ में त्रस जीव उत्पन्न हो गये हों तो ऐसे पदार्थों का भी त्याग करना माँस त्याग नाम का मूल गुण है।

प्रश्न २९. मधु त्याग का क्या अभिप्राय है ? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– "मधु" शहद को कहते हैं, मधु मक्खियों द्वारा संग्रहीत पुष्पों की पराग, जिसमें वे अपना मल भी विसर्जित करती रहती हैं तथा उसी में असंख्यात सम्मूर्च्छित मधु मक्खियाँ भी उत्पन्न होती रहती हैं एवं मरती रहती हैं, ऐसी असंख्यात जीव राशि का समूह रूप मधु दूर से ही त्याग करने योग्य है, एक बूंद के सेवन से ७/१२ गाँवों को जलाने के बराबर पाप लगता है ऐसा आचार्य भगवंतों ने कहा है।

प्रश्न ३०. पंचोदम्बर फलों के त्याग का आशय क्या है ? यदि इनका त्याग न करें तो क्या हानि है ?

उत्तर– बरगद, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर (अंजीर) इन वृक्षों के फलों (गूलरों) का त्याग करना पंचोदुम्बर (पाँच उदम्बर) फलों का त्याग करना कहलाता है। इन फलों को जब कोई तोड़ता है तो उसमें छोटे-छोटे जीव चलते या उड़ते हुए से दिखायी देते हैं, आचार्य भगवन्तों ने ऐसे फलों में असंख्यात जीव बतलाये हैं, इसलिए विवेकी श्रावक के लिए उन फलों का एवं जिन फलों में कीड़े / त्रसजीव उत्पन्न हो गये हों तथा अनजान फलों का भी त्याग कर देना चाहिए, इनका त्याग किये बिना अहिंसा धर्म का पालन नहीं हो सकता।

प्रश्न ३१. रात्रि भोजन त्याग करने से आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर– सूर्यास्त के १ घड़ी (२४ मिनट) पूर्व से सूर्योदय के १ घड़ी (२४ मिनट) बाद तक चारों प्रकार के आहार व जल का त्याग करना रात्रि भोजन त्याग कहलाता है ।

प्रश्न ३२. रात्रि भोजन त्याग आवश्यक क्यों है ? कारण सहित बताईये।

उत्तर– सूर्यास्त के कुछ समय पूर्व से ही वायुमण्डल में कुछ आर्द्रता / शीतलता आना प्रारंभ हो जाता है, दिन में सूर्य का प्रखर प्रकाश रात्रि में आर्द्रता युक्त अंधकार, दोनों मिश्र प्रकृति मिलने से असंख्यात जीवोत्पत्ति होना प्रारंभ हो जाती है, वे जीव भोजन के साथ हमारे पेट में चले जाते हैं, जिससे जीव घात का पाप भी लगता है एवं विषैले जीव हमारे घात के कारण भी हो सकते हैं। दिन में सूर्य के प्रकाश में अल्ट्रावायलेट किरणों के माध्यम से सूक्ष्म जीवोत्पत्ति नहीं होती तथा अंधकार में रहने वाले जीव भी दिन में अंधेरे कोने आदि में छुप

जाते हैं, वे ही जीव रात्रि में भोजन के साथ हमारे अंदर चले जाते हैं, जिससे अहिंसा धर्म का पूर्ण पालन नहीं हो सकता। अतैव स्व – पर हितार्थ रात्रि भोजन का त्याग प्रत्येक श्रावक को अनिवार्य है।

प्रश्न ३३. रात्रि भोजन त्याग का कथन क्या मात्र जैन शास्त्रों में ही आता है या अन्यत्र भी कहा गया है ?

उत्तर– रात्रि भोजन त्याग का कथन श्रावकों के आचरण सम्बन्धी सभी जैन ग्रंथों में तो मूलतः दिया ही है, इसके अतिरिक्त जैनेत्तर ग्रंथों में भी रात्रि भोजन का निषेध किया है, डॉक्टर वैज्ञानिक लोग भी रात्रि भोजन का सर्वथा निषेध करते हैं। अतएव जिनेन्द्र भगवान को मानने वाले श्रावक को रात्रि भोजन पूर्णत: छोड़ देना चाहिए।

प्रश्न ३४. रात्रि भोजन त्याग का क्या फल होता है ?

उत्तर– जो व्यक्ति रात्रि में (सूर्यास्त से २४ मिनट पूर्व से सूर्योदय के २४ मिनट बाद तक) चारों प्रकार के आहार का त्याग कर देते हैं, वे कालान्तर में राजा, अधिराजा, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, अर्द्ध चक्री, चक्रवर्ती व इन्द्र के वैभव को भोग कर अनन्तर मोक्ष प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त एक वर्ष के लिए चारों प्रकार के आहार व जल का रात्रि में त्याग करने से ६ माह का निर्जल उपवास करने का फल प्राप्त होता है।

प्रश्न ३५. चार प्रकार के आहार कौन–कौन से होते हैं ? बताने की कृपा करें।

उत्तर–

(१) खाद्य– जो पदार्थ खाने योग्य होते हैं तथा जिनसे उदर पूर्ति होती है, वे खाद्य पदार्थ कहलाते हैं, जैसे–दाल, रोटी, लड्डू, पेड़ा, सब्जी, चावल, खीर इत्यादि।

(२) स्वाद्य– जिन पदार्थों को स्वाद के लिये खाया जाता है वे स्वाद्य पदार्थ हैं, जैसे–सौंफ, इलायची, लौंग, सुपाड़ी आदि।

(३) लेह्य– जो ऊँगली से चाटने योग्य पदार्थ हैं वे लेह्य कहलाते हैं, जैसे–रबड़ी, हलुवा आदि।

(४) पेय– पिये जाने वाले पदार्थ पेय कहलाते हैं जैसे– दूध, शर्बत, छाछ, रस, पानी आदि।

प्रश्न ३६. जल छान कर क्यों पीना चाहिए ? अनछने जल के उपयोग करने से क्या हानि है ?

उत्तर– अनछने जल में असंख्यात जीवों का समूह (जल चर जीव होते हैं) होता है, उन जीवों की रक्षा करने हेतु एवं स्वकीय स्वास्थ्य की सुरक्षा हेतु जल को छानकर ही प्रयोग करना चाहिए, अनछने जल का प्रयोग करने वाला श्रावक असंख्यात जीवों के घात का भागीदार होता है, अतैव सदैव छना हुआ एवं प्रासुक जल ही उपयोग में लाना चाहिए।

प्रश्न ३७. अनछने जल की एक बूंद में कितने जीव पाये जाते हैं ?

उत्तर- सूक्ष्म-दर्शी यंत्र द्वारा वैज्ञानिकों ने अनछने जल की एक बूंद में ३६,४५० जीव देखे हैं, किन्तु जैन दर्शन / जिनागम में कहा गया है कि एक बूंद अनछने जल में असंख्यात जीव होते हैं।

प्रश्न ३८. अनछने जल को पीने से स्वास्थ्य को क्या हानि हो सकती है?

उत्तर- अनछना जल पीने से उस जल में चींटी, जूंआं, मक्खी, मच्छर, मकड़ी, बिच्छु आदि जीव भी पानी के साथ उदर में जा सकते हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति निम्नांकित रोगों का शिकार हो सकता है चींटी, चींटा से "बुद्धि नाश", बिच्छू, छिपकली से "मरण", जूं, जुएं से "जलोदर", अन्य विषैले जंतु से "मारणान्तिक वेदना", लिख या लीख से "कोड़" (कुष्ठ रोग) अथवा "मरण", बाल से "स्वरभंग" ।

प्रश्न ३९. कुछ लोग कहते हैं कि " जल छान कर क्यों पियें, क्या उसमें कोई हाथी, घोड़े, ऊंट आदि पड़े हैं " ऐसा कहने से क्या उन्हें पाप का बंध होता है? (यदि उसमें जीव हैं तो हमें हाथ से पकड़ के बता दो, तभी हम मानेंगे)।

उत्तर- यह तो ऊपर (पूर्व में ही) कहा जा चुका है कि अनछने जल में असंख्यात जीव होते हैं, वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मदर्शी यंत्र से ३६,४५० जीव अनछने जल की एक बूंद में प्रत्यक्ष देखे हैं, आप भी देख सकते हैं, उन जीवों की रक्षा हेतु, धर्म साधना हेतु एवं अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा हेतु भी जल छान कर ही पीना चाहिए। वे छोटेछोटे जीव भी कभी तुम्हारे जैसे मनुष्य रहे होंगे, अनछना जल पीने से एवं अनछने जल में जीवों की सत्ता (अस्तित्व) स्वीकार न करने से मानो वे जलकायिक या सूक्ष्म शरीर के धारक बादर जीव हुए हैं। हाथ से पकड़कर ही वस्तुओं का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता अपितु, अनुमान आदि ज्ञान के द्वारा भी वस्तुओं के अस्तित्व को माना जाता है। जैसे कि-शब्दों को हाथ से पकड़कर तुम्हें नहीं दिखा सकते, फिर भी तुम उनका अस्तित्व मानते हो, गंध, स्पर्श, रस (स्वाद) प्रेम, घृणा, दुःख, सुखानुभूति हाथ से पकड़ने के अयोग्य होते हुए भी आप स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार प्रत्यक्षदर्शी, सर्वज्ञ, केवली भगवंतों की आज्ञा के व सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखने वाले वैज्ञानिकों के कथन को स्वीकार करते हुए अनछने जल का त्याग कर देना चाहिए। जो व्यक्ति कुतर्क देकर जैन आगम का, सर्वज्ञ देव-अरिहंत भगवान की बात का खण्डन करता है ऐसा प्राणी कषायावेश से तीव्र अशुभ परिणाम करता हुआ महापाप का बंध करने वाला एवं दुर्गति का पात्र होता है ।

प्रश्न ४०. नित्य देव दर्शन करने से आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर- वीतरागी, सर्वज्ञ, परम हितोपदेशी, घातिया कर्म रहित, सकल परमात्मा अरिहंत परमेष्ठी के/ उनके तद्रुप प्राण प्रतिष्ठा युक्त जिनबिम्ब के दर्शन करना ही देव दर्शन कहलाता है। जिनेन्द्र

देव के दर्शन नित्य ही करना चाहिए।

प्रश्न ४१. नित्य देव दर्शन क्यों करना चाहिए ?

उत्तर– वीतरागी जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से हमें भी निज स्वरूप को प्राप्त करने की प्रेरणा प्राप्त होती है, उनके दर्शन करने से हमारा वह दिन मंगलमय व्यतीत होता है तथा जिनेन्द्र भगवान के भक्तिपूर्वक दर्शन करने से पापों का नाश एवं पुण्य की प्राप्ति होती है–अतएव नित्य ही जिनेन्द्र देव के दर्शन करना चाहिए।

प्रश्न ४२. यदि कोई जैन श्रावक नित्य देव दर्शन नहीं करे तो क्या हानि है ?

उत्तर– जैन बंधु वही कहलाता है जो जिनेन्द्र भगवान का अनुयायी हो, जो जिनेन्द्र प्रभू के बताये गये मार्ग पर नहीं चले वह जैन नहीं हो सकता–एक सच्चे जैन श्रावक को बिना जिन दर्शन किये शांति नहीं मिलती, वह जिन दर्शन के लिए वैसे ही तड़पता है जैसे–जल के बिना मछली। जो जैन श्रावक अपने नगर या गाँव में वीतरागी जिन मंदिर होते हुए भी एवं अपनी अनुकूलता होने पर भी, बिना जिन दर्शन किये भोजन ग्रहण करता है या जो कभी जिन दर्शन करने नहीं जाता एवं जिसकी जिनदर्शन करने की भावना भी नहीं होती, ऐसे व्यक्ति को आचार्यों ने मिथ्यादृष्टि कहा है। सम्यग्दृष्टि व्यक्ति प्रायः जिन दर्शन के बिना जल पान भी ग्रहण नहीं करता। (विशेष देव दर्शन से सम्बन्धित अध्याय में देखें)।

प्रश्न ४३. देव दर्शन दिन में कितनी बार करना चाहिए?

उत्तर– देव दर्शन दिन में कितनी भी बार कर सकते हैं, कम से कम २ बार तो करना ही चाहिए, प्रातः बिना कुछ खाये पिये एवं संध्या काल में भी देव दर्शन करना चाहिए, अधिकतम की कोई सीमा निश्चित नहीं है।

प्रश्न ४४. "जीवों पर दया करना" इस मूलगुण को कहने का आपका क्या अभिप्राय है?

उत्तर– संसार में जितने भी प्राणधारी हैं उन्हें नहीं सताना, न उन्हें मारना, यदि वे दुःखी दिखायी दें तो उनके दुःखों को दूर करने का शक्तिशः पूर्ण प्रयास करना अथवा मन, वचन व शरीर से किसी को कष्ट नहीं देना एवं मन, वचन, काय पूर्वक उनके प्राणों की रक्षा करने का भरसक प्रयास करना। जीवों की रक्षा करने की क्रिया को ही दया कहते हैं।

प्रश्न ४५. जीव दया, करूणा, अहिंसा, रहम, प्रेम, वात्सल्य क्या ये सभी एकार्थवाची हैं या भिन्नार्थक हैं ? यदि भिन्नार्थक हैं तो इन शब्दों के अर्थ क्या–क्या हैं ?

उत्तर– स्थूल दृष्टि से देखने पर ये शब्द एकार्थवाची प्रतीत होते हैं, एक दूसरे के पूरक या हेतु भी हो सकते हैं किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर कुछ अंतर भी दृष्टि गोचर होता है ।

जीव दया का अर्थ है – जीवों की रक्षा करने की क्रिया ।

करूणा का अर्थ है – अंतर में जीव रक्षा की भावना होना ।

अहिंसा का अर्थ है – सम्पूर्ण प्रकार की हिंसा का त्याग।

रहम का अर्थ है – करूणा व दया की मिश्रित अवस्था।

प्रेम का अर्थ है – पर के प्रति आत्मीयता का भाव।

वात्सल्य का अर्थ है –नि:स्वार्थ भाव से गुणों में प्रीति करना। साधर्मी के गुणों में प्रीति / मातृत्वभाव के समान (जैसा गायका अपने बछड़े के प्रति होता है) आंतरिक स्नेह।

प्रश्न ४६. श्रावक अवस्था में अहिंसा का पूर्ण रूप से परिपालन तो असंभव है, फिर वह मूल गुण का पालन कैसे कर सकेगा?

उत्तर– हाँ ! आपका कहना बिल्कुल सत्य है, वह अहिंसा का पूर्ण पालन नहीं कर सकता किन्तु, यथाशक्य अहिंसा का पालन एवं पूर्ण अहिंसा की भावना तो भायी जा सकती है, जिस भावना भाने के परिणाम स्वरूप वह कालान्तर में पूर्ण अहिंसा भी प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न ४७. श्रावक को कौन–सी हिंसा का त्याग करना अनिवार्य है ?

उत्तर– हिंसा चार प्रकार की होती है, **यथा**–(१) संकल्पी हिंसा (२) उद्योगी हिंसा (३) आरंभी हिंसा (४) विरोधी हिंसा। उक्त चारों हिंसाओं में से श्रावक संकल्पी हिंसा का पूर्णतः एवं शेष तीन हिंसाओं का यथाशक्य त्यागी होता है, वह निष्प्रयोजन जीव हिंसा नहीं करता। किन्हीं परिस्थितियों में उससे हिंसा हो जाती है, तो वह मन में अहिंसा का ही भाव रखता है।

प्रश्न ४८. उक्त चारों हिंसाओं की संक्षेप में परिभाषाएं बताने की कृपा करें।

उत्तर–

(१) संकल्पी हिंसा– संकल्प / इरादापूर्वक किसी जीव को मारना संकल्पी हिंसा है, यह हिंसा बुद्धिपूर्वक एवं हिंसा के अभिप्राय से ही हिंसा की जाती है ।

(२) उद्योगी हिंसा– व्यापार, खेती, उद्योग धन्धे, आदि के माध्यम से न चाहते हुए भी जो हिंसा हो जाती है उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं।

(३) आरंभी हिंसा– जो हिंसा गृह कार्य में–जैसे–पानी भरना, भोजन बनाना, झाड़ू लगाना, सेवा करना, कपड़े धोना, पुताई करना, सफाई करना इत्यादि कार्य करने में हो जाती है वह आरंभी हिंसा कहलाती है।

(४) विरोधी हिंसा– अपनी, अपने परिवारीजनों की, अपने धर्म की, अपने नगर, देश आदि की या सच्चे देव, शास्त्र, गुरू की रक्षा करने में जो हिंसा हो जाती है वह विरोधी हिंसा है।

प्रश्न ४९. यदि कोई व्यक्ति जैनकुल में जन्म लेने के उपरान्त भी बुद्धि पूर्वक उक्त आठ मूलगुणों का पालन नहीं करे, जिनेन्द्र भगवान के मार्ग का अनुशरण/अनुकरण न करे तो वह किसके समान है ?

उत्तर- जो व्यक्ति जैन कुल में जन्म लेने के उपरान्त भी समस्त अनुकूलता होने पर भी श्रावक के लिए अनिवार्यभूत इन आठ मूलगुणों का पालन नहीं करता वह अजैनवत् है, उसकी क्रियाओं से जिनधर्म की पवित्रता खण्डित होती है, उस व्यक्ति को देखकर लोग जिन धर्म के सदाचार के सम्बन्ध में शंकाशील हो सकते हैं, अतः ऐसे व्यक्ति अपने नाम के साथ जैन शब्द लिखने से पूर्व "अ" लगा लेवें, जिसके प्रभाव से वह व्यक्ति स्वतः ही शुद्ध जैनत्व को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत भी हो सकता है।

प्रश्न ५०. इन अष्ट मूल गुणों का पालन करने का क्या फल प्राप्त होता है ?

उत्तर- उक्त अष्ट मूल गुणों का पालन करने वाला श्रावक इस लोक में सम्मान, प्रतिष्ठा, अनुपम सुख को प्राप्त करता है, सातिशय पुण्य का बंध व पाप कर्मों का संवर, निर्जरा को प्राप्त करता है, परलोक में उत्तम गति को, विशेष वैभव, महापदवियों के अनुपम सुखों को भोगता हुआ कालान्तर में परम निर्वाण / मोक्ष सुख, अनन्त, शाश्वत, अक्षय आनन्द आदि अनन्त गुणों को प्राप्त करता है अर्थात् संसार सागर से मुक्त हो सिद्ध अवस्था को भी प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न. ५१. देव दर्शन स्तुति गाकर सुनाओ ।

उत्तर- **देव-दर्शन-स्तुति**

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी ।
यों विरद आप निहार स्वामी, मेटो जामन मरण जी ।।१।।
तुम न पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी ।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ।।२।।
भव विकट वन में करम बैरी, ज्ञानधन मेरो हर्‌यो ।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्यो ।।३।।
धन घड़ी यों धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो ।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो ।।४।।
छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरें ।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत, कोटि रवि छवि को हरे ।।५।।

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो ।।६।।
मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरण जी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारन तरण जी ।।७।।
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नर-राज परिजन साथ जी ।
बुध जाचहूँ तव भक्ति भव भव, दीजिये शिवनाथ जी ।।८।।

प्रश्न. ५२. प्रातःकाल प्रभु से क्या प्रार्थना करनी चाहिये ?

उत्तर- **प्रभाती प्रार्थना**

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस ।
ज्ञान भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास ।।१।।
जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहिं कहें कदा ।
परधन कबहुँ न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा ।।२।।
तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष सुधा नित पिया करें ।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें ।।३।।
दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार ।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार ।।४।।
सुख-दुःख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल ।
न्याय-मार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतम बल ।।५।।
अष्ट करम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय ।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सब टल जाय ।।६।।
आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहिं चढ़े कदा ।
विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा ।।७।।
हाथ जोड़कर शीश नवावें, तुम को भविजन खड़े-खड़े ।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण शरण में आन पड़े ।।८।।

प्रश्न. ५३. सांयकाल प्रभु की क्या स्तुति करनी चाहिये ?

उत्तर– **सांयकाल की स्तुति**

हे सर्वज्ञ ज्योतिमय गुणिमणि, बालक जन पर करहु दया ।
कुमति निशा अंधियारी कारी, सत्य ज्ञान रवि छिपा दिया ।।१।।
क्रोध मान माया अरू तृष्णा, यह वटमार फिरें चहुँ ओर ।
लूट रहे जग जीवन को यह, देख अविद्या तम का जोर ।।२।।
मारग हमको सूझे नाहीं, ज्ञान बिना सब अन्ध भये ।
घट में आय विराजो स्वामी, बालक जन सब खड़े हुये ।। ३।।
सतपथ दर्शक जनमन हर्षक, घट घट अन्तरयामी हो ।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिसके तुमही स्वामी हो ।।४।।
घोर विपति में आन पड़ा हूँ, मेरा बेड़ा पार करो ।
शिक्षा का हो घर घर आदर, शिल्पकला संचार करो ।।५।।
मेल मिलाप बढ़ावें हम सब, द्वेष भाव हो घटाघटी ।
नहीं सतावें किसी जीव को, प्रीति क्षीर की गटागटी ।।६।।
मात-पिता अरु गुरुजन की हम, सेवा निशदिन किया करें ।
स्वारथ तजकर सुख दें परको, आशिष सबका लिया करें ।।७।।
आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहिं चढ़े कदा ।
विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा ।।८।।
दोउ कर जोडें बालक ठांडे, करें प्रार्थना सुनिये तात ।
सुख से बीते रैन हमारी, जिनमत का हो शीघ्र प्रभात ।।९।।
मात पिता की आज्ञा पालें, गुरु की भक्ति धरें उर में ।
रहे सदा हम करतव तत्पर, उन्नति कर दे पुर पुर मे ।।१०।।

प्रश्न. ५४. भूधरदास जी कृत बारह भावना गाकर सुनाओ?

उत्तर– **।।बारह भावना भूधरदास कृत।।**

।। दोहा ।

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार ।
मरना सबको एकदिन, अपनी अपनी बार ।।१।।
दलबलदेवी देवता, मात पिता परिवार ।
मरती विरियां जीवको, कोई न राखनहार ।।२।।
दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान ।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ।।३।।
आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय ।
यूँ कबहूँ इस जीवको, साथी सगा न कोय ।।४।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय ।
घर संपत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ।।५।।
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पीजरा देह ।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिनगेह ।।६।।

सोरठा

मोहनींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा ।
कर्मचोर चहुँओर, सरबस लूटें सुध नहीं ।।७।।
सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमें ।
तब कुछ बने उपाय, कर्मचोर आवत रुकै ।।८।।

दोहा

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शौधै भ्रम छोर ।
या विध बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर ।।९।।
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार ।
प्रबल पंच इंद्री-विजय, धार निर्जरा सार ।।१०।।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
तामैं जीव अनादितें, भरमत है बिन ज्ञान ।।११।।

धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान ।।१२।।
जाँचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंतारैन ।
बिन जाँचे बिन चिंतये, धर्म सकल सुख दैन ।।१३।।

******

।। इति ।।

सव्वसेट्ठोसही चिय, अभक्खचागो य सुद्धपरिणामो ।
पहुभत्ती गुरुसेवा, जवादी दु पुण्णकज्जाइं ।। १६९ ।।

अभक्ष्य त्याग, शुद्ध परिणाम, प्रभुभक्ति, गुरुसेवा और जाप आदि पुण्यकार्य ही सर्वश्रेष्ठ औषधि हैं ।

कला विण्णाणं (कला विज्ञान) - १६९
(आ. वसुनंदी मुनि)

णियड-भव्वो हि सक्को, कुणिदुं सस्सद-सिद्ध-खेत-जत्तं ।
झायिदुं समवसरणं मुणीणं च देदुमाहारं ।। ७५८ ।।

शाश्वत सिद्धक्षेत्र की यात्रा, समवशरण का श्रद्धा से करता है वह उत्तम समाधि पुनः सिद्ध पद को प्राप्त करता है ।

पुण्यार्जक परिवार

सी.ए. राजेंद्र भूटा, डा.मंजुला भूटा, गौरव कारिया,

सोनल कारिया, मेहर कारिया,

रवि राजेंद्र भूटा ,डा. शीतल भूटा,

श्रेया भूटा, जीनास्था भूटा,

(बोरीवली मुंबई)

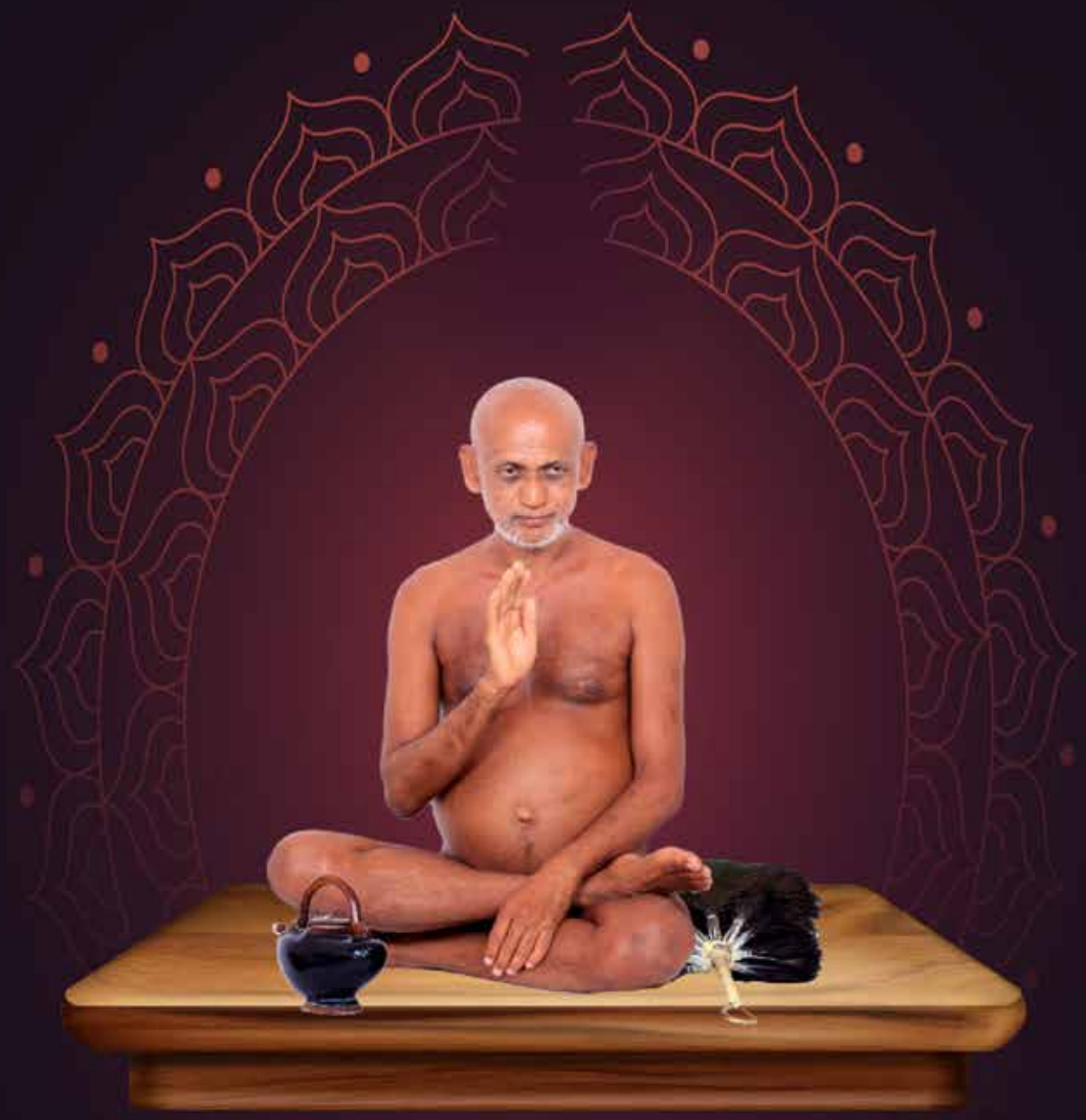

मूल विणा रुक्खस्स, ठि दि –वि ड्ढि– फलुप्पत्ती संभवो ण ।
जह तह जण–जीवणस्स, विगासो ण सक्कलं विज्जं ।। ५ ।।
(आ. वसुनंदी मुनि / कला विण्णाणं)

जैसे जड के बिना वृक्ष की स्थिति, वृध्दि, फलोत्पति संभव नहीं है उसी प्रकार सत्कला व सद् विद्या के बिना जन जीवन का विकास संभव नहीं है ।